इस्लामी राज्य के पहले ख़लीफ़ा

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०)

डा० कौसर यज़दानी नदवी

विषय-सूची

या ? कहाँ ?

कुछ बातें

अगर आपने 'विश्व-नायक' पढ़ी है तो आपको याद होगा, मैंने एक वादा किया [।। वह यह कि 'विश्व-नायक' इस्लामी इतिहास पर तैयार की जा रही पुस्तकों ो पहली कड़ी है । यदि अल्लाह ने चाहा तो आगे एक क्रम के साथ दूसरी, सरी, चौथी.... कड़ियाँ भी प्रस्तुत की जाएँगी । 'हज़रत अबू बक्र (रज़ि०)' इसी जीर की दूसरी कड़ी है ।

इस पुस्तक में कोशिश की गई है कि संक्षेप में उस समय की परिस्थितियों और न परिस्थितियों से जूझते और उन्हें अपने महान उद्देश्य के अनुसार ढालते, इस्लामी ज्य के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के महान व्यक्तित्व को उभारकर ामने लाया जाए, ताकि आपकी आँखों में एक सच्चा मुसलमान, एक कर्मनिष्ठ ोद्धा, एक कुशल राजनयिक, एक आदर्श शासक और एक महान जन-सेवी का ष निखरकर आ जाए और आप अन्दाज़ा कर सकें कि इस्लाम न सिर्फ़ अच्छे ेद्धान्तों का योग है, बल्कि उसके ये सिद्धान्त जब भी व्यावहारिक रूप में ढलते तो एक से एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निखारकर, सँवारकर न जाने कहाँ । कहाँ पहुँच जाते हैं ।

इस समय यह पुस्तक आपके हाथ में है, इस पर अल्लाह का जितना भी शुक्र मदा किया जाए, कम है । यह पुस्तक अपने उद्देश्य में सफ़ल हो, ऐसी मेरी उस हान सत्ता से दुआ है, जिसने हमें क़लम पकड़ना सिखाया और जिसकी ही विशेष कृपाओं का यह फल है ।

—आपका

डा० कौसर यज़दानी नदवी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम्
(अल्लाह अत्यन्त दयावान, कृपाशील के नाम से)

परिचय

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को स्वर्गवासी हुए अभी कुछ ही घंटे हुए थे और अभी आपका कफ़न-दफ़न भी न हो सका था, हर ओर शोक की लहर दौड़ रही थी, मुहाजिर[1] और दूसरे मुसलमान मस्जिद नबवी में जमा थे कि एक व्यक्ति ने आकर बताया कि अनसार (मदीनावासी) बनू साइदा परिवार के मकान में ख़िलाफ़त (राज्य संचालन) की समस्याओं पर बातचीत करने और अपने में से ही किसी को ख़लीफ़ा (राज्य संचालक) बनाने के लिए इकट्ठा हो रहे हैं ।

सच पूछिए तो यह मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) का ऐसी प्रबल साज़िश थी कि इससे इस्लाम की साख ख़त्म हो जाती, इस्लामी राज्य की नींव खुद जाती, इस्लामी जीवन-व्यवस्था तहस-नहस हो जाती और सबसे बड़ी बात यह कि पैग़म्बरे इस्लाम के पैदा होने और उनके इस्लामी आन्दोलन उठाने का उद्देश्य ही विफल हो जाता, जिसके लिए जान-माल की क़ुरबानियाँ तक दे दी गई थीं । कैसी घातक थी यह साज़िश !

बात यहाँ तक बढ़नेवाली थी कि मुहाजिर और अनसार एक-दूसरे का ख़ून-ख़राबा कर बैठते और इस्लाम के उस आदर्श की जड़ कट गई होती जिसने मुसलमानों को एक दूसरे का भाई बना दिया था और उसमें ऐसा प्रेम भर दिया था कि आज तक वह प्रेम देखने को नहीं मिला । वह तो अल्लाह की कृपा थी और इस्लाम के दीप को जलता रहना था । ठीक समय पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे महान नेताओं को इस साज़िश का पता चल गया और वे दौड़ पड़े इस साज़िश का उन्मूलन करने के लिए ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के ऊँच-नीच समझाने के बाद भी अनसार जो झुके तो इतना भर कि एक अमीर (प्रधान) हमारा हो और एक तुम्हारा । ज़ाहिर है यह सुझाव कभी भी मानने योग्य न था और मौक़ा भी न था कि इसकी कटु आलोचना की जाती और भरी सभा में द्वेषपूर्ण वातावरण पैदा कर दिया जाता, जोड़-तोड़ की रीति डाल दी जाती, उखाड़-पंछाड़ की कोशिशें की जाने लगतीं कि मन

---

1. अल्लाह की राह में घरबार छोड़कर मक्के से मदीना आनेवालों को मुहाजिर अर्थात 'हिजरत करनेवाला' कहा जाता है ।

एक दूसरे से जुड़ने के बजाए कटने लगते, प्रेम-भाव पैदा होने के बजाए घृणा की भावना उग्र हो उठती और वही कुछ होता जिसे मिटाने के लिए इस्लाम आया था। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने ऐसे समय में दूरदर्शिता दिखाई और ऐसा वक्तव्य दिया कि जिसने इस्लाम की डूबती नैया को उबार लिया। उनके वक्तव्य के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

> साथियो ! मैं आपके कारनामों व उपकारों को झुठला नहीं सकता, पर सच पूछिए तो तमाम अरब क़ुरैश के सिवा किसी के नेतृत्व को मान ही नहीं सकते, फिर मुहाजिरों के सबसे पहले इस्लाम अपनाने के कारण और अल्लाह के रसूल के वंश से सम्बन्ध रखने की वजह से उनके अधिकार आपसे अधिक हैं।''.....

फिर उन्होंने हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे रहनुमाओं की ओर संकेत करते हुए कहा—

> ''ये लोग इस योग्य हैं कि इन्हें आप अपना नेता चुन सकते हैं, इससे इस्लामी राज्य की बुनियादें भी मज़बूत होंगी और अरबों को भी इनके नेतृत्व में चलने में कोई आपत्ति न होगी।''

इस प्रकार जब सभी सहमत हो गए कि समय की मसलहतों के तहत मुसलमानों का प्रधान कोई क़ुरैश ही हो, तो इससे पहले कि लोग हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के बताए नामों पर विचार करते, हज़रत उमर (रज़ि०) ने आगे बढ़कर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के हाथ में हाथ दे दिया, मानो उन्होंने यह एलान कर दिया कि हममें से सबसे बेहतर नेता स्वयं हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) हैं। वास्तविकता भी यही थी। भला अबू बक्र (रज़ि०) जैसे नेता की मौजूदगी में वे किसी दूसरे को अपना नेता क्यों चुनते ? फिर इसका साहस ही कौन जुटा पाता कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के मुक़ाबले में आए, वे अबू बक्र (रज़ि०) जो उम्र में बड़े होने के साथ अपने चरित्र व आचरण में आदर्श थे, जो अपनी दूरदर्शिता और कार्य-कुशलता में प्रसिद्ध थे और सबसे बड़ी बात यह कि उन्होंने ही पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की अनुपस्थिति में इस्लामी जमाअत व संस्था का नेतृत्व किया था। ऐसे व्यक्तित्व के बारे में प्रस्ताव आते ही सर्वसम्मति से उनका नेतृत्व मान लिया गया।

हज़रत उमर (रज़ि०) के यह कहते ही कि—'हम आपके हाथ पर बैअत[1] करते हैं, क्योंकि आप हमारे सरदार और हम लोगों में सबसे बेहतर हैं और रसूलुल्लाह

---

1. इस बात का वचन है कि हम आपके नेतृत्व में चलेंगे और इस तरह अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का आज्ञापानल करके लोक-परलोक'दोनों को सफल बनाने की कोशिश करेंगे।

(सल्ल०) आपको सबसे ज़्यादा चाहते थे,' तमाम लोगों ने उन्हें अपना प्रधान मान लिया और बैअत के लिए टूट पड़े। इस तरह समय से पहले ही उस साज़िश का उन्मूलन कर दिया गया जो इस्लाम की जड़ काटने के लिए रचा गया था। फिर इसके बाद पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के कफ़न-दफ़न का काम पूरा किया गया।

इन तमाम कामों से निबटने के बाद दूसरे दिन मस्जिद में आम बैअत हुई और पूरी जनता ने आपके आज्ञापालन का वचन दिया। ऐसे ही मौक़े पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने मुसलमानों के प्रधान के रूप में जो पहला वक्तव्य दिया और जिसमें राज्य की नीतियों और कार्यक्रमों का एलान किया गया वह इन शब्दों में था—

> "लोगो ! मैं तुम्हारा प्रधान नियुक्त किया गया हूँ, हालाँकि मैं तुम लोगों में सबसे बेहतर नहीं हूँ। अगर मैं अच्छा काम करूँ तो मेरी सहायता करो और अगर बुराई की ओर जाऊँ, तो मुझे सीधा कर दो। सच्चाई अमानत है, झूठ ख़ियानत है। तुम्हारा कमज़ोर आदमी भी मेरे नज़दीक ताक़तवर है, यहाँ तक कि मैं उसका हक़ वापस दिला दूँ अगर अल्लाह ने चाहा, और तुम्हारा ताक़तवर आदमी भी मेरे नज़दीक कमज़ोर है, यहाँ तक कि मैं उससे दूसरों का हक़ दिला दूँ अगर अल्लाह ने चाहा। जो जाति अल्लाह की राह में संघर्ष छोड़ देती है उसे अल्लाह रुसवा कर देता है और जिस जाति में दुराचार फैल जाते हैं, अल्लाह उसमें उसकी विपदाओं को भी फैला देता है।
>
> मैं अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का आज्ञापालन करूँ तो मेरा कहा मानो, लेकिन जब अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की अवज्ञा करूँ, तो तुम पर मेरा आज्ञापालन अनिवार्य नहीं।"

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०)

नाम और परिवार

यह थे इस्लाम के पहले ख़लीफ़ा, मुसलमानों के प्रधान, अमीरुल मोमिनीन हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) जो पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से लगभग तीन साल छोटे थे और जिनका नाम था 'अब्दुल्लाह' और उपनाम था 'अबू बक्र' । इस्लाम ग्रहण करने से पहले तो इनका नाम अब्दुल काब था, पर बाद में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इसे अब्दुल्लाह कर दिया । उन्हें उपाधि के तौर पर 'सिद्दीक़' और 'अतीक़' भी कहा जाता था । सिद्दीक़ इसलिए कि मर्दों में सबसे पहले उन्होंने ही रसूलुल्लाह (सल्ल०) का रसूल होना स्वीकार किया था और सिद्दीक़ का अर्थ है 'बहुत ज़्यादा सच बोलनेवाला' या 'अपने कर्मों से अपने कथनों की पुष्टि करनेवाला' उन्हें अतीक़ इसलिए कहा जाता था कि अरबी में अतीक़ के कई अर्थ होते हैं और उनका व्यक्तित्व उन तमाम ही अर्थों से मेल खा जाता था, जैसे वह अति सुन्दर थे और अतीक़ का अर्थ 'सुन्दर' है, वह अपने चरित्र व आचरण में सर्वोत्तम थे और अतीक़ हर उस चीज़ को कहते हैं जो सबसे उत्तम हो । इस्लामी सिद्धांतों में दृढ़ रहने के कारण पैग़म्बरे इस्लाम ने एक बार उनसे कहा था, "ऐ अबू बक्र ! तुम नरक की आग से मुक्त हो"। और अतीक़ हर उस व्यक्ति को कहते हैं जो दासता के बंधनों से मुक्त हो चुका हो ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के बाप का नाम उसमान था, उपनाम अबू क़हाफ़ा था । उनका घराना अरब के उच्च घरानों में से था । मक्का विजय के बाद वे मुसलमान हुए ।

उनकी माँ का नाम सलमा और उपनाम उम्मे ख़ैर था, शुरू ही में मुसलमान हो गई थीं । इनसे पहले केवल 39 व्यक्ति मुसलमान हुए थे ।

मुसलमान होने तक

व्यापार अरबों का पुराना पेशा था, ख़ास तौर से क़ुरैश तो व्यापार के अलावा और किसी पेशे को अपनाना कदापि पसन्द न करते थे । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने भी बड़े होकर व्यापार को अपनाया और अपनी लगन, मेहनत, ईमानदारी और सुन्दर व्यवहार के कारण एक अच्छे व्यापारी बन गए । इस सिलसिले में उन्होंने शाम (सीरिया) और यमन की अनेकों यात्राएँ भी कीं । वे अपनी सच्चाई और

अमानतदारी में अधिक प्रसिद्ध हो गए थे, यहाँ तक कि मक्केवालों का उनपर इतना भरोसा हो गया था कि वे उनके यहाँ ख़ूनबहा का माल (क़त्ल के जुर्माने का माल) जमा करने लगे थे और अगर कभी दूसरे व्यक्ति के यहाँ जमा होता तो क़ुरैश इसे स्वीकार न करते थे ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को इस्लाम से पहले भी शराब से वैसी ही घृणा थी जैसी मुसलमान होने के बाद रही । उन्होंने एक बार ऐसे ही किए गए एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि 'शराब पीने से आबरू लुटती है ।'

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के इन्हीं सब गुणों की वजह से लोग अहम मामलों में उनसे मशविरे माँगते और उनकी रायों पर भरोसा करते ।

उन्हें पैग़म्बरे इस्लाम से बचपन ही से प्रेम था और उनके मन में अपनत्व की भावना रची-बसी थी । यही कारण था कि आप (सल्ल०) की मित्रमंडली के विशेष सदस्य थे । प्राय: व्यापारिक यात्राओं में भी आपका साथ रहा करता था ।

मुसलमान हो गए

जिस ज़माने में पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर पहली वह्य आई, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) व्यापार के सिलसिले में यमन गए हुए थे । जब वापस हुए तो क़ुरैश के सरदार अबू जह्ल, उत्बा और शैबा आदि से मिलने गए । विभिन्न विषयों पर बातचीत होती रही । जब हज़रत अबू बक्र ने कोई ताज़ा ख़बर पूछी तो बताया कि सबसे बड़ी ख़बर और बड़ी बात यह है कि अबू तालिब के यतीम बच्चे ने नबी होने का दावा किया है । भला वह नबी कैसे हो सकता है ? इसके विरोध की स्कीमें बनाने के सिलसिले में हम तुम्हारा ही इन्तिज़ार कर रहे थे ।

ऐसा सुनते ही हज़रत अबू बक्र असल बात जानने के लिए उत्सुक हो उठे और क़ुरैश के इन सरदारों को विदा करके पैग़म्बरे इस्लाम के घर की ओर चल पड़े । कुछ पूछा, कुछ समझा, यहाँ तक कि मन में सत्य-ज्योति भड़क उठी और वहीं मुसलमान हो गए—बेझिझक, निडर, न भविष्य की परवा, न वर्तमान का विचार । कैसे थे निर्भीक अबू बक्र (रज़ि०) कि सत्य का ज्ञान होते ही, आगे-पीछे हानि-लाभ देखे बिना उसे लपककर ग्रहण कर लिया । अल्लाह की कृपा उन पर सदैव बनी रहे !

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की यह विशेषता रहती दुनिया तक अनुकरणीय रहेगी कि उन्होंने जिसे सत्य जाना, उसे बिना किसी भय व झिझक के स्वीकार कर लिया, जिसे सही समझा, उस पर तन-मन-धन से जुट गए, न किसी प्रकार की खोट, न कैसी भी कपट, कठिन से कठिन घड़ी आ जाए, पहाड़ की तरह अटल ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) मर्दों में वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सबसे पहले इस्लाम ग्रहण किया । उस समय तो उँगलियों पर गिने जाने भर के मुसलमान थे ही । औरतों में सबसे पहली औरत हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) थीं, ग़ुलामों में सबसे पहले मुसलमान ग़ुलाम हज़रत ज़ैद बिन हारिसा थे और लड़कों में सबसे पहले हज़रत अली ने इस्लाम की पुकार का जवाब दिया । उस समय इतने ही भर थे इस्लाम की काँटों भरी राह पर चलनेवाले मुसाफ़िर ।

मक्के का जीवन

मक्के में जन्म लेता हुआ यह इस्लामी आन्दोलन, सच पूछिए तो, क़ुरैश और दूसरे अरब क़बीलों के लिए एक चैलेंज था, इसलिए कि इस्लामी आन्दोलन की बुनियाद एकेश्वरवाद पर खड़ी की गई थी, एक ऐसे ईश्वर के आज्ञापालन पर जो स्रष्टा है, स्वामी है, पालनहार है, विधाता है, न्यायी है, मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन उसी के ज़िम्मे है । उसकी हिदायत व रहनुमाई के लिए वह अपने पैग़म्बरों को भेजता है जो उसका विधान लाते हैं और जो यह बताते हैं कि उसकी प्रसन्नता किसमें है और किसमें नहीं है और जिनकी शिक्षा यह होती है कि अगर तुम अपना लोक-परलोक दोनों सुधारना चाहते हो और हर तरीक़े से अपना जीवन सफल बनाना चाहते हो तो उस सर्वशक्तिमान पालनहार की आज्ञाओं का पालन करो, वरन् समझ लो कि तुम्हारा लोक भी बिगड़ेगा और परलोक में भी घाटे के सिवा तुम्हें कुछ न मिलेगा । हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) इस सिलसिले के आख़िरी पैग़म्बर थे, जो मुख्यतः क़ुरैश और अरबवासियों को और सामान्यतः पूरे संसारवालों को एकेश्वरवाद की यही शिक्षा देने आए थे और बताने आए थे कि इस सत्य को मान लेने में ही तमाम लोगों का लोक-परलोक दोनों में भला होगा। लेकिन यहाँ तो क़ुरैश और दूसरे क़बीलों ने 'देवी-देवताओं' को ही अपना 'सब कुछ' समझ लिया था। उन्हीं से वे मन्नतें करते, उन्हीं से मुरादें माँगते, उन्हीं के सामने अपनी ज़रूरतें रखते, हालाँकि उनके ये 'उपास्य' व 'आराध्य' स्वयं रचना थे, रचयिता न थे। अपने वजूद को बाक़ी रखने के लिए वे उसी एक सर्वशक्तिमान स्रष्टा के मुहताज थे—कैसे थे उनके ये बोदे व फुसफुसे विचार ।

एक ओर इस्लाम की बुद्धि की कसौटी पर खरे उतरनेवाले ये सिद्धान्त, दूसरी ओर ग़ैर इस्लाम की परिपाटियाँ, रस्म व रिवाज और पुरखों के समय से चले आ रहे संस्कार । आख़िर दोनों में निभती भी तो कैसे ?

फिर यह केवल विचारों का विरोध न था, बल्कि इसी मौलिक धारणा के परिवर्तन से नया व्यक्ति जन्म ले रहा था, नए समाज का निर्माण हो रहा था, नई सभ्यता

सिर उठा रही थी, नैतिक मापदण्ड बदल रहे थे, नई संस्कृति पनप रही थी । स्पष्ट है कि यह क्रांति व्यक्ति से लेकर समूह तक में व्याप्त थी । ऐसी क्रांति को भला क़ुरैश और दूसरे क़बीले ठंडे पेटों कैसे बर्दाश्त कर लेते । उन्हें तो अपने को देखना था, पुरखों की बातें ढोनी थीं, महन्तों का हुक्म मानना था, पुरानी संस्कृति व सभ्यता से चिमटे रहना था, इसलिए उन्होंने जी खोलकर विरोध किया और घोर विरोध ।

एक ओर विरोधियों की यह सरगर्मियाँ और दूसरी ओर इस्लाम की कमज़ोर आवाज़, फिर भी देखिए, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का साहस कि उन्होंने सत्य को निस्संकोच स्वीकार कर लिया, फिर यह कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) मुसलमान क्या हुए, इस्लाम के प्रचार में तन-मन-धन से जुट गए । शुरू के तीन साल तक इस्लामी आन्दोलन खुलकर मैदान में नहीं आया । व्यक्तिगत रूप से एक-एक से भेंट की जाती, इस्लामी शिक्षाएँ उसके सामने रखी जातीं, ऊँच-नीच समझाई जाती, मन कहता तो वह इस्लामी सिद्धान्तों को लपककर स्वीकार कर लेता, वरन् 'बकवास' समझकर सुनी-अनसुनी कर देता । इस मुद्दत में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने कितनी तन्मयता से काम किया इसका अन्दाज़ा इससे कीजिए कि हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान, हज़रत ज़ुबैर बिन अव्वाम, हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़, हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास और हज़रत तलहा बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) जैसे इस्लाम के महान नेताओं को इस्लाम की गोद में ले आए । इसी तरह हज़रत उसमान बिन मज़नून, हज़रत अबू उबैदा, हज़रत अबू सलमा और हज़रत ख़ालिद बिन सईद बिन आस (रज़ि०) ने भी उन्हीं की कोशिशों से इस्लाम स्वीकार कर लिया ।

तीन साल बाद

तीन साल बाद इस्लामी आन्दोल खुलकर मैदान में आ गया । इस्लाम का खुल्लम-खुल्ला एलान करना था कि विरोधी गुट में जान पड़ गई। उन्होंने इस्लाम को जड़ से उखाड़ फेंकने की पूरी कोशिश शुरू कर दी । अत्याचार व दमन की नीति अपनाई गई, झूठे प्रोपगंडे किए, निराधार आरोप लगाए गए, तिरस्कार व बहिष्कार किया, ज़ुल्म के पहाड़ तोड़े गए, आर्थिक नाकाबन्दी की गई, तात्पर्य यह है कि इस्लाम के उन्मूलन के लिए उनके बस में जो कुछ भी था उसे किया गया और पूरा बल देकर किया गया ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ऐसे डिगा देनेवाले हालात में भी अडिग रहे— निर्भीक व निडर, बल्कि संघर्ष में ज्यों-ज्यों तेज़ी पैदा होती जाती थी उनकी दृढ़ता बढ़ती जाती थी, यहाँ तक कि उनकी कोशिशों में कमी होने के बजाए ज़्यादती ही होती चली गई— न खाने की सुध, न पीने की चिन्ता, इस्लाम के प्रचार में लगे रहे

और बराबर लगे रहे । एक बार तो ऐसा हुआ कि इस्लाम के विरोधी, कुछ क़ुरैश, एक जगह जमा होकर इस्लाम और मुसलमानों ही की चर्चा कर रहे थे कि इस नए नबी ने तो हमारे 'धर्म' का सत्यानाश कर दिया है कि इतने में पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) काबा की परिक्रमा (तवाफ़) के लिए उधर निकले। वे भीतर घुसे ही थे कि पूरी भीड़ आप पर यह कहते हुए टूट पड़ी कि 'अरे ओ आदमी ! तू ही हमारे उपास्यों की निन्दा करता है ।' वे आपको मारते जाते थे और कहते जाते थे—

"क्या तू सब ख़ुदाओं को एक कर देगा ?" आख़िर आप (सल्ल०) अचेत होकर गिर पड़े । किसी ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से जाकर कहा, "अपने मित्र की ख़बर लो ।" वे भागे हुए आए और भीड़ में घुस गए । किसी को मारते, किसी को हटाते और कहते जाते— "तुम पर अफ़सोस है । क्या एक व्यक्ति को तुम ऐसा कहने पर मारे डालते हो कि मेरा पालनहार अल्लाह है और हाल यह है कि वह अल्लाह की ओर से खुली दलील तुम्हारे पास लाया है ।"

हज़रब अबू बक्र (रज़ि०) के इस तरह बीच में आ पड़ने को भीड़ कब पसन्द करती । सबके सब उन्हीं पर झपट पड़े । इतना मारा कि सिर फट गया और ख़ून बहने लगा । कुछ नातेदारों ने आकर बीच-बचाव किया तब कहीं जाकर जान बची । उनकी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि इस घटना के बाद जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) घर पहुँचे तो हाल यह था कि सिर पर जिस जगह हाथ लगता वहीं से बाल अलग हो जाते । एक ओर मार पड़ रही थी और दूसरी ओर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के सब्र और ईमान की दृढ़ता का हाल यह था कि वे यही कहते जाते—

"ऐ आदर और प्रतिष्ठावाले ! तेरी सत्ता बड़ी ही बरकतोंवाली है ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) जहाँ एक ओर पूरे मन के साथ इस्लाम के प्रचार से लगे रहे, वहीं उन्होंने अपने माल को भी इस्लाम की राह में वक़्फ़ कर दिया था । शुरू-शुरू में इस्लाम के माननेवालों में उन्हीं लोगों की तादाद ज़्यादा थी जो ग़रीब और निस्सहाय थे, पर थे विचारों के स्वतन्त्र, उन्हें न तो अपनी 'साख' देखनी थी, न उन्हें 'वंश-परम्परा' की लाज रखनी थी । उन्हें न धन का लोभ था, न पद का, उन्हें तो सत्य-ज्योति मिलनी चाहिए थी और इसे वे पा गए थे । इन ग़रीब और निस्सहाय मुसलमानों में बड़े संख्या ऐसी थी जो ग़ुलाम और लौंडी थीं और जिन्हें अपने ग़ैर मुस्लिम मालिकों द्वारा ऐसे-ऐसे कष्ट व दुख झेलने पड़ते थे कि आज भी उन्हें सोचकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । ये क्रूर व निष्ठुर उन ग़रीब मुसलमानों को कड़ी धूप में गर्म बालू पर लिटा देते, कभी कुछ करते और कभी

कुछ । उनकी इस निष्ठुरता का अंदाज़ा इससे कीजिए कि हज़रत बिलाल (रज़ि०) को उनका मालिक उमैया ठीक दोपहर में जलती हुई रेत पर लिटाता, भारी पत्थर सीने पर रख देता और कहता—

"इस्लाम से इनकार कर, नहीं तो यूँ ही घुट-घुटकर मर जाएगा ।"

पर उस समय भी कष्ट व पीड़ा की इस स्थिति में उनके मुख से 'अल्लाह एक है' की आवाज़ निकलती । फिर उमैया उनके गले में रस्सी बाँधकर लड़कों के सुपुर्द कर देता और वे उन्हें शहर के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक घसीटते फिरते । एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने बिलाल (रज़ि०) की ऐसी करुण दशा देखी तो उनसे रहा नहीं गया और उन्होंने हज़रत बिलाल (रज़ि०) को ख़रीद कर आज़ाद कर दिया और सिर्फ़ हज़रत बिलाल (रज़ि०) ही क्यों, ग़ुलामी की इस लानत से आमिर बिन फ़ुहैरा, नज़ारा, नहदिया, ज़ारिया बिन्त नहदिया (रज़ि०) आदि न जाने कितने ग़रीब व ग़ुलाम थे, जिन्हें उन्होंने नजात दिलाई । कैसी थी हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की करुणा—अपार करुणा !

हब्श की ओर हिजरत और वापसी

जैसे-जैसे मुसलमानों की संख्या बढ़ती जा रही थी, विरोधियों का विरोध भी बढ़ता चला गया, यहाँ तक कि मक्के में मुसलमानों का रहना दूभर हो गया । ऐसी स्थिति में पैग़म्बरे इस्लाम ने मुसलमानों को हबश की ओर हिजरत (केवल ईश प्रसन्नता के लिए घर-बार, धन दौलत छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाने का नाम हिजरत है) कर जाने की आज्ञा दे दी । हबश लाल सागर के तट पर बसा अफ़्रीक़ा का एक राज्य है, जिस पर उस समय एक ईसाई राजा राज करता था । वह बहुत दयालु और न्यायी था । हबश की ओर मुसलमानों की हिजरत का जहाँ एक ध्येय यह था कि अपने प्राणों पर खेलकर इस्लाम का प्रचार करनेवाले वे मुसलमान मक्के के बाद इस्लाम को फैलाने का मौक़ा पा सकेंगे, वहीं यह लाभ भी कुछ कम अहम न था कि इस प्रकार कुछ मुसलमान क़ुरैश के अत्याचारों से सुरक्षित हो जाएँगे और उन्हें इस्लामी कर्त्तव्यों के पूरा करने में कोई बाधा न होगी ।

हबश को हिजरत की आज्ञा मिली और मुसलमान वहाँ जाना शुरू हो गए । पहली बार पंद्रह और दूसरी बार लगभग अस्सी मुसलमानों ने हबश के लिए प्रस्थान किया ।

उस समय मक्के में मुसलमानों पर आज़माइशों के जो पहाड़ तोड़े जा रहे थे, उससे हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) बच न सके थे, बल्कि एक बार हज़रत तलहा (रज़ि०), जो इन्हीं की कोशिशों से मुसलमान हो चुके थे, के चाचा नोफ़ुल इब्न

ख़्वैलद ने इन दोनों को बाँधकर बहुत मारा और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के परिवारवालों ने उनकी तनिक भी सहायता न की । पहुँचाई गई ऐसी पीड़ाओं से मजबूर होकर उन्होंने हिजरत का इरादा कर लिया और पैग़म्बरे इस्लाम से आज्ञा लेकर हबश की ओर चल पड़े । पाँच मंज़िलें तय करके बर्कुलगमाद नामक स्थान पर पहुँचे थे कि क़ारा क़बीले के सरदार इब्नुद्दुग़ना से मुलाक़ात हुई । उसने देखकर आश्चर्य से पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"मुझे मेरी क़ौमवालों ने निकलने पर मजबूर कर दिया है," हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने कहा, "अब विदेश जाकर ही अपने पालनहार का आज्ञापालन करूँगा ।"

"तुम जैसा आदमी जो बेसहारों का सहारा, दुखियों का दुख दूर करनेवाला, अतिथि-सत्कार करनेवाला, नातेदारों का ख़याल रखनेवाला न अपने घर से निकल सकता है और न निकाला जा सकता है," इब्नुद्दुग़ना ने कहा, 'मैं तुम्हें पनाह दूँगा, मक्का को लौट चलो और स्वदेश में रहकर ही अपने पालनहार की भक्ति करो ।"

इस तरह वह इब्नुद्दुग़ना के साथ मक्का वापस आए । उसने क़ुरैश में घूम-घूम कर एलान किया कि आज से अबू बक्र (रज़ि०) मेरी पनाह में हैं । ऐसे व्यक्ति को देश से नहीं निकाल देना चाहिए जो दीन-दुखियों की सहायता करता है, सगे-सम्बन्धियों से सम्बन्ध बनाए रखता है, अतिथि-सत्कार करता है और संकट काल में लोगों के काम आता है । क़ुरैश ने इब्नुद्दुग़ना की अपील को स्वीकार तो कर लिया, पर अबू बक्र (रज़ि०) को यह बता देने की शर्त लगा दी कि वे जब और जिस तरह मन कहे, अपने घर में नमाज़ें पढ़ें और क़ुरआन का पाठ करें, पर घर से बाहर नमाज़ पढ़ने की उन्हें इजाज़त नहीं, वरना हमको भय है कि हमारी औरतें और नवजवान उनके विचारों का शिकार हो जाएँगे ।

क़ुरैश का यह भय अपनी जगह पर सही था, इसलिए कि सदा से ही सत्य में इतना आकर्षण होता है कि चुम्बक की तरह सूझ-बूझवाले जीते-जागते इनसान को अपनी ओर खींच लेता है । सत्य की राह में लाख पाबंदियाँ लगाई जाएँ, उसके प्रवाह को रोकने के लिए बान्ध बाँधे जाएँ, बहरहाल वह अपने लिए रास्ता बना ही लेता है । सत्य तो उस गेंद जैसा है कि उसे जितना ही दबाया जाता है, उतना ही ऊपर उछलती है । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने नमाज़ आदि के लिए घर के आँगन में एक मस्जिद बना ली थी । अब वहीं पर वे नमाज़ें पढ़ते और क़ुरआन का पाठ करते । वे बड़े ही नम्र स्वभाव के थे । जब पढ़ते तो उससे इतना प्रभावित होते कि रोते-रोते चेहरा आँसुओं से तर हो जाता । आपकी ऐसी

स्थिति देखकर पत्थर से पत्थर दिलवाला व्यक्ति भी पसीजे बिना न रहता । क़ुरैश ी औरतें, बच्चे, नवजवान यह दृश्य देखते तो सोचने पर मजबूर होते कि आख़िर ह क्या चीज़ है जिसने अबू बक्र (रज़ि०) के मन पर इतनी गहरी छाप डाली और फिर उसका जो नतीजा होता, वह ज़ाहिर था ।

क़ुरैश के सरदार ऐसी वस्तुस्थिति देखकर घबरा उठे और इब्नुद्दुग़ना को बुलाकर हा कि हमने तुम्हारी ज़मानत पर अबू बक्र (रज़ि०) को इस शर्त पर पनाह दी ी कि वे अपने मकान में छिपकर अपने धार्मिक काम करें, पर अब तो वे आँगन मस्जिद बनाकर खुल्लम-खुल्ला नमाज़ें पढ़ते हैं, इससे हमें भय है कि हमारी ौरतें और बच्चे प्रभावित होकर कहीं 'विधर्मी' न हो जाएँ, इसलिए तुम उन्हें ता दो कि ऐसा करने से रुक जाएँ, वरना तुम्हें जमानत से मुक्त कर दें ।

इब्नुद्दुग़ना ने हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) से जाकर कहा—"तुम जानते ो कि मैंने किस शर्त पर तुम्हारी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया है, या तो तुम उस र क़ायम रहो, या मुझे ज़िम्मेदारी से मुक्त समझो । मैं नहीं चाहता कि मेरे बारे अरब में यह मशहूर हो जाए कि मैंने अपना वचन पूरा हीं किया ।"

"मुझे तुम्हारी पनाह की ज़रूरत नहीं, मेरे लिए अल्लाह ौर उसके रसूल (सल्ल०) ी पनाह काफ़ी है ।" सब कुछ सुनने के बाद यह था हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ा उत्तर । कैसे निर्भीक थे हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) और कैसी भी परिस्थितियाँ ों, ये सत्य मार्ग पर अविचल आगे बढ़ते रहनेवाले थे । च है कि एक अल्लाह ौर उसकी पनाह में जाने के बाद मनुष्य ऐसा ही निर्भीक निडर हो जाता है—

वह एक सज्दा जिसे तू गिराँ झता है ।
हज़ार सज्दों से देता है आदमी को निजात ॥

मदीने की ओर हिजरत

पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) और आपके साथियों की कोशिश से अब इस्लाम की ावाज़ मक्के से बाहर पहुँचने लगी थी, यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में मदीना गर इस्लामी आन्दोलन का गढ़ बन गया और वहाँ के लोग, मक्के में मुसलमानों कड़े जीवन को देखकर, ऐसी इच्छा प्रकट करने लगे कि तमाम मुसलमान और ग़म्बरे इस्लाम मदीना चले आएँ तो बेहतर हो ।

इधर सत्य के फैलने का अर्थ है असत्य का विनाश। ऐसा भाँपकर इस्लाम ौर मुसलमानों के विरोध में शत्रुओं ने और तेज़ी पैदा कर दी और यह तय कर गया कि इस्लामी आन्दोलन के बढ़ते क़दम को रोक दिया जाएगा और मुसलमानों ो बड़ी से बड़ी तकलीफ़ देने में कोई कमी न की जाएगी । शत्रुओं की इस नीति

से ऊबकर अन्त में मुसलमानों को हिजरत की इजाज़त दे दी गई। यह हिजरत मदीने के लिए थी। ऐसी मदीनावालों की इच्छा भी थी और इसकी भी आशा हो चली थी कि जल्द ही मदीना इस्लामी स्टेट की शक्ल इख़तियार कर लेगा।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी शत्रुओं द्वारा पहुँचाए गए कष्टों से बचे न रहे, वे भी अत्याचार की लटेप में आ ही गए। इसी लिए उन्होंने भी मदीने की ओर हिजरत कर जाने का निश्चय कर लिया, पर पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने उनसे इस में जल्दी न करने को कहा और बताया कि शायद मुझे भी जल्द ही जाना हो। आपके ऐसा कहने पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने सोचा शायद मुझे साथ ही चलने का हुक्म हो, फिर उन्होंने इसी ध्येय के लिए दो ताक़तवर ऊँटों को पालना-पोसना भी शुरू कर दिया।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) जब कभी भी हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के घर जाते थे वह सुबह या शाम ही का समय होता। एक दिन आदत के ख़िलाफ़ दोपहर की चमचमाती धूप में आप आ गए। आपके सिर पर चादर लिपटी हुई थी। उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अपने बाल-बच्चों में बैठे हुए थे। किसी ने कहा— "अल्लाह के रसूल आ रहे हैं", वे चौंके और अनचाहे ही बोल पड़े—"इस नावक़्त में आपका आना किसी विशेष कारण से होगा।" वे दरवाज़े की ओर दौड़ पड़े। आपने आते ही दरवाज़े पर पूछा, "घर में कोई परदेवाला तो नहीं है ?"

"कोई दूसरा नहीं, सिर्फ़ मेरी ही दोनों लड़कियाँ हैं," हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने कहा।

यह सुनकर आपने सूचना दी—

"अबू बक्र हिजरत की इजाज़त आ गई।"

"और मेरा साथ ? ऐ अल्लाह के रसूल !"

"हाँ, तैयार हो जाओ।"

ऐसा सुनते ही अबू बक्र (रज़ि०) की आँखों में ख़ुशी के आँसू निकल आए। हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि उनको रोते देखकर ही मैंने जाना कि आदमी को जब बहुत ज़्यादा प्रसन्नता होती है, उस समय भी उसके आँसू निकल आते हैं। जल्दी-जल्दी तैयारियाँ शुरू हो गईं, सामान बाँधे जाने लगे और रात के समय चल निकलने का निश्चय कर लिया गया। उसी समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने आपको उन दोनों पाले जा रहे ऊँटों में से एक ऊँट भी दे दिया, यहाँ तक कि तमाम प्रबन्ध पूरे हो गए और रात में यह छोटा-सा कारवाँ मदीने की ओर चल पड़ा, अपना घर-बार, माल-दौलत और साथी-संगी सभी कुछ उस सत्ता के भरोसे छोड़ दिया जिसके आदेशों को लागू करना वे ज़रूरी जानते थे और समझते थे

कि लोक-परलोक की सफलता इसी में निहित है, वरन् घाटा ही घाटा है ।

इसी कारवाँ की पहली मंज़िल सौर की गुफा थी, जहाँ वे तीन दिन ठहरे रहे ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने अपने सुपुत्र हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) से कह रखा था कि दिन को मक्के में जो बातें हों, रात को हमें उसकी सूचना देते रहना। इसी तरह अपने दास आमिर इब्न फ़ुहैरा (रज़ि०) को हुक्म दे दिया था कि मक्के की चरागाह में बकरियाँ चराएँ और रात के समय गुफा के पास ले आएँ । रात के समय इन्हीं बकरियों का ताज़ा दूध भोजन के काम आता । सुबह में जब अब्दुल्लाह (रज़ि०) वापस आते तो हज़रत आमिर इब्न फ़ुहैरा (रज़ि०) उनके पद-चिह्नों पर ही बकरियाँ लाते, ताकि चिह्न मिट जाएँ और किसी को संदेह न हो ।

इधर यह व्यवस्था थी और उधर शत्रु भी अपनी कोशिशों से ग़ाफ़िल न थे । दूसरे दिन जब उन्हें अपने साज़िश की नाकामी और 'शिकार' के भाग निकलने सरीखी अपनी असफलता साफ़ दीख पड़ने लगी तो क्रोधाग्नि में जलता-भुनता अबू जह्ल अपने कुछ साथियों के साथ हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के घर आया और उनकी बेटी हज़रत असमा से पूछा, "तेरा बाप कहाँ है ?" उन्होंने कहा—"मुझे नहीं मालूम", इसपर उस निष्ठुर ने उनके चेहरे पर इतनी ज़ोर से थप्पड़ मारा कि कान का झूमर निकलकर दूर जा पड़ा ।

लेकिन बात इतने से बननेवाली न थी, उसी समय एलान किया गया कि जो व्यक्ति मुहम्मद को गिरफ़्तार करके लाएगा, उसे सौ ऊँट पुरस्कार में दिए जाएँगे । बस फिर क्या था, इस लालच में अनेकों अनेक वीर आपकी खोज में निकले । कोई आबादी, कोई जंगल, कोई पहाड़ और कोई मार्ग ऐसा न होगा जिसे उन्होंने छान न मारा हो, यहाँ तक कि कुछ लोग गुफा के पास भी पहुँच गए । उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) तो अनजाने भय से तड़प उठे और बड़ी ही निराशा से बोले—

"अगर तनिक भी उन्होंने नीचे की ओर देखा तो हम देख लिए जाएँगे ।"

आपने तसल्ली देते हुए कहा—"निराश न हो, हम सिर्फ़ दो नहीं हैं, एक तीसरा (अल्लाह) भी हमारे साथ है ।"

ऐसा सुनते ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का मन शान्त हो गया और उन्हें विश्वास हो गया कि अवश्य ही अल्लाह ऐसे मौक़े पर हमारी सहायता करेगा । यह उसी की तो कृपा थी कि जो शत्रु आपको खोजते-खोजते उस गुफा तक पहुँचे थे, उन्हें तनिक भी इसकी शंका न हुई कि गुफा में भी कोई हो सकता है और वे निराश होकर चले गए ।

चौथे दिन यह कारवाँ फिर आगे को चला । अब इसमें दो के बजाए चार व्यक्ति

थे । एक तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के दास आमिर इब्ने फ़ुहैरा (रज़ि०) के वृद्धि हुई थी, ताकि उनकी सेवाएँ प्राप्त की जा सकें और दूसरे अब्दुल्लाह इब्न उरैक़ित (रज़ि०) थे जो गाइड (Guide) का काम कर रहे थे ।

12 रबीउलअव्वल को ये लोग मदीना पहुँचे । दोपहर का वक़्त था । मदीनावाले ने चूँकि आमतौर से आपको नहीं देखा था, इसलिए वे इन दोनों को देखकर अन्तर न कर सके कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) कौन हैं, सम्मान रोक बना हुआ था और वे कोई प्रश्न भी नहीं कर सकते थे यहाँ तक कि सूर्य सिर पर आ गया, आपके शुभ चेहरे पर धूप पड़ने लगी । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने उठकर चादर का साया कर दिया, उस समय लोगों ने पहचाना ।

हिजरत करके मदीना आनेवाले मुसलमानों का स्वागत और आदर-सत्कार मदीनावासियों ने जिस प्रकार किया वह इतिहास का एक अमिट अंग है, इसी लिए तो उन्हें अनसार (मदद करनेवाले) की उपाधि दी गई । मक्के से आए हुए ये मुहाजिर अपना सब कुछ छोड़कर मदीना आए थे, वे बेसरोसामान थे, उनके पास पूँजी न थी, उनके पास मकान न थे, ऐसी स्थिति में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भाई बनाने की जो रीति डाली और अनसार ने जिस तरह इसे सहर्ष स्वीकार किया, उसे मानव-इतिहास कभी भुला न सकेगा । ये भाई सगे भाइयों से भी बढ़कर एक दूसरे के साथी व हमदर्द साबित हुए, यहाँ तक कि एक अनसारी जब अपने भाई मुहाजिर को भाई मान लेने के बाद घर ले गए तो उनके सामने अपना सब माल व जायदाद रख दिया और कहा, "इसमें से आधा तुम्हारा है । मेरे पास दो पत्नियाँ हैं, एक को तलाक़ देता हूँ, इद्दत गुज़रने के बाद तुम उससे निकाह कर लेना ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०), ख़ारिजा इब्ने ज़ैद अनसारी के भाई बनाए गए थे, इसलिए वे शुरू में मुहल्ला सुख़ में रहने लगे । जब उनका मकान मस्जिदे नबवी के पास बनकर तैयार हो गया तो उसमें आ गए । यह मकान कच्ची ईंटों का बना था, छत खजूर की लकड़ी और पत्तों से पाट दी गई थी और केवल इतनी ऊँची थी कि आदमी हाथ उठाए तो छत से जा लगे ।

मदीने में

मदीना आने के बाद मुसलमानों के कष्ट सहने और सताए जाने का युग तो ख़त्म हो गया, लेकिन वहाँ उनकी दूसरी समस्याएँ थीं— कठोर समस्याओं से निबटना था, शत्रु के एजेण्टों और पंचगामियों से अपने को सुरक्षित करना था, इस उभरते राज्य की नींव मज़बूत करनी थी और बाहर के शत्रुओं का भी डटकर मुक़ाबला करना था जो बराबर इस कोशिश में थे कि मुसलमानों को कुचलकर रख दिया

जाए । ये और ऐसी ही तमाम समस्याओं को सुलझाने में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने पैग़म्बरे इस्लाम का पूरा साथ दिया और अपने बहुमूल्य सुझावों के साथ-साथ अपने चरित्र व आचरण से, अपने धन-दौलत से जिस प्रकार इस्लामी आन्दोलन के बाग़ को सींचते और उसे हरा बनाते रहे, वह अपना उदाहरण आप है ।

बद्र की लड़ाई छिड़ी हुई थी, एक भयानक लड़ाई—मुट्ठी-भर निहत्थे मुसलमानों और शत्रुओं की हथियारों से लैस भारी सेना की लड़ाई—मुसलमान लड़ रहे थे और मार रहे थे । उन्होंने शत्रुओं पर धावा बोल दिया था.... अचूक धावा । शत्रुओं की सेना अपनी संख्या और अपनी शक्ति के बल पर लड़ रही थी । वे भी वार पर वार कर रहे थे । प्रतिक्षण यही भय था कि कब कौन-सा मुसलमान सेनानी शत्रु की तलवार का शिकार हो जाए, इसलिए हर व्यक्ति अपनी सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान संजोए हुए था, पर पैग़म्बरे इस्लाम की रक्षा और भी ज़रूरी थी । आपकी घात में तो शत्रु की पूरी सेना थी ही पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का त्याग तो देखिए, उनका आत्म-विश्वास तो देखिए, अपने नेता के नेतृत्व पर अपना सब कुछ न्योछावर कर देने की भावना तो देखिए, वह अपने प्राण पर खेलकर अपने नेता की सुरक्षा कर रहे थे, शत्रुओं के वार का मुक़ाबला कर रहे थे और निडर व बेझिझक एक-एक को अपने किए का मज़ा चखा रहे थे । शत्रुओं की भारी सेना ने किस-किस के मन को दहला न दिया होगा, ले-देकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) बच रहे थे, जिन्हें पूरा विश्वास था कि अन्त में विजय हमारी ही होगी, इसलिए कि अल्लाह का यह फ़ैसला था और आपको यह मालूम था कि अन्तिम विजय सत्य की ही होती है और हम सत्य पर हैं ! एक ओर पैग़म्बरे इस्लाम का यह अटूट विश्वास था कि वे लड़ाई के मैदान में जमे रहे, तनिक भी नहीं डिगें, दूसरी ओर उनके श्रद्धालुओं की निश्छल श्रद्धा देखने की चीज़ थी, ख़ास तौर से हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की कि अपनी सेवा व रक्षा में तनिक भी न चूके । एक बार आपकी चादर काँधे से ढलककर नीचे आ गई कि वह तड़प उठे और तुरन्त ही उठाकर काँधे पर रख दी, फिर नारे लगाते हुए शत्रु-सेना की पंक्तियों में घुस गए ।

इस लड़ाई में 70 सैनिक मुसलमानों द्वारा पकड़े गए । उस समय की रीति के अनुसार तो इनका वध ही कर दिया जाना उचित होता, पर कैसा यह अमानुषिक कर्म— इस्लामी नैतिकता के प्रतिकूल । आपने इस पर अमल नहीं किया, बल्कि इस सम्बन्ध में अपने साथियों से मशविरा लेना ही उचित समझा । हज़रत उमर (रज़ि०) का सुझाव था कि उन्हें क़त्ल ही कर दिया जाए, सैनिक दृष्टि से यही उचित है, पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की राय दूसरी थी । उन्होंने कहा, ये लोग अपने ही भाई-भतीजे हैं, इनका वध कैसे भी सही नहीं, इनके साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिए और इनसे कुछ जुर्माना (फ़िदया) लेकर इन्हें छोड़ देना चाहिए ।

आपको हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का सुझाव ही पसन्द आया और इसी पर अमल किया गया ।

उहुद की लड़ाई में

बद्र की इस लहाई में क़ुरैश की हार उनकी प्रतिष्ठा पर ज़बरदस्त बट्टा थी, वे इसे कैसे सहन करते, उन्होंने एक बड़ी लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी । उहुद की लड़ाई उनकी इन्हीं तैयारियों का नतीजा है ।

इस लड़ाई में भी शत्रुओं के मुक़ाबले में मुसलमानों की तादाद बहुत कम थी, फिर भी अपने दृढ़ विश्वास और अल्लाह पर किए गए भरोसे के कारण शुरू में वे जीत रहे थे, पर कुछ ज़बरदस्त भूल हो जाने के बाद यह जीत हार में बदल गई, शत्रुओं ने पलटकर फिर हमला कर दिया । बहुत-से मुसलमानों के क़दम डगमगा गए, पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ऐसी विकट स्थिति में भी आख़िर वक़्त तक अडिग रहे—पहाड़ की तरह अविचल । स्थिति के इस तरह बदल जाने में पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को कड़ी चोट आई । लोग आपको पहाड़ पर लाए तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी साथ में थे । अबू सुफ़ियान ने पहाड़ के क़रीब आकर पुकारा, "क्या मुहम्मद है ?" कोई जवाब न मिला तो उसने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) का नाम लिया । इससे मालूम होता है कि शत्रु भी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बाद हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को ही महान नेता समझते थे ।

लड़ाई ख़त्म होने के बाद शत्रु जब वापस हो गए तो एक टुकड़ी उनका पीछा करने के लिए भेजी गई । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी उसमें शामिल थे ।

फिर बाद में बद्र और उहुद की लड़ाई तक ही नहीं वे हर काम में, हर जगह पैग़म्बरे इस्लाम का साथ देते, आपकी सहायता करते, उचित सुझाव देते और हर वह काम करने को तैयार रहते, जिसका हुक्म मिलता ।

आज़माइश

सन् 06 हि० की बात है । पैग़म्बरे इस्लाम एक लड़ाई जीतकर वापस आ रहे थे, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी साथ में थे । वापसी में मदीना पहुँचने से पहले ही रात हो गई, इसलिए पूरी फ़ौज ने वहीं पड़ाव डाल दिया । हर सफ़र में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का नियम यह था कि अपने साथ अपनी किसी एक पत्नी को ले लेते थे, इस बार हज़रत आइशा आपके साथ थीं । सुबह के समय वह कुल्ला-फ़राग़त के लिए गईं, वापस आईं तो देखा गले का हार कहीं गिर

या है, खोजते हुए फिर उसी ओर चलीं, पर जब ढूँढकर पड़ाव पर वापस पहुँचीं ा लोग जा चुके थे, उसी जगह दुखी व परेशान बैठ गईं । इसी बीच हज़रत सफ़वान ज़ि०) ने जो बहुत बूढ़े थे और कारवाँ के चल पड़ने के बाद, तमाम सामान ौर दूसरी चीज़ों की अच्छी तरह देख-भाल करने के बाद ही सबसे पीछे चला रते थे हज़रत आइशा को देख लिया और ऊँट पर बिठाकर मदीना आ गए ।

बस बात इतनी भर थी, इसी को ले उड़े इस्लामी जमाअंत में घुस आनेवाले त्रु के एजेन्ट, मुनाफ़िक़ जिनका ध्येय ही यह था कि किसी तरह इस्लाम और सलमानों को बदनाम करके और उनके ख़िलाफ़ झूठा प्रोपेगण्डा करके उनकी धाक रब जगत से ख़त्म कर दी जाए । मुनाफ़िक़ों ने इस बात का ऐसा प्रचार किया क बेचारे कुछ भोले-भाले मुसलमान भी इसी लपेट में आ गए, यहाँ तक कि ज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के एक नातेदार और उन्हीं की देख-रेख में पलनेवाले मसतह बिन असासा भी इस साज़िश का शिकार हो गए ।

कैसी थी आजमाइश की यह घड़ी हज़रत आइशा के लिए, बाप अबू बक्र रज़ि०) के लिए और दूसरे क़रीबी नातेदारों के लिए । झूठ के पर अवश्य होते ं, पर सच्ची बात भी कभी छिपी नहीं रहती, प्रकट होकर रहती है । अल्लाह ो हर खुले-छिपे को जाननेवाला है, उसने हज़रत आइशा (रज़ि०) की पाकदामनी ो प्रकट कर ही दिया ।

इस आज़माइश की घड़ी में हज़रत आइशा (रज़ि०) के बाप हज़रत अबू बक्र रज़ि०) को जैसा कुछ भी दुख हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इसी रेशानी व दुख की हालत में उन्होंने मिसतह बिन असासा के खान-पान व रहन-सहन की ज़िम्मेदारी से यह कहकर हाथ खींच लिया कि—

"ख़ुदा की क़सम ! इस द्रोह के बाद मैं उसकी ज़िम्मेदारी नहीं उठा सकता ।"—लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की उदारता तो देखिए, उनके हृदय की कोमलता तो देखिए, उनकी भावनाएँ तो निहारिए, उनके चरित्र की उच्चता र तो नज़र डालिए, अल्लाह के प्रति उनकी भक्ति व आज्ञापालन तो देखिए कि स पालनहार का यह हुक्म आते ही कि—

> "तुममें के बड़ों और मालदारों को चाहिए कि वे अपने नातेदातों, ग़रीबों और अल्लाह की राह में हिजरत करनेवालों को (मदद न देने की क़सम न खाएँ और चाहिए कि उनकी ग़लतियाँ) माफ़ करें, और उनसे आँख बचा जाएँ । क्या तुम यह नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ करे और अल्लाह तो बहुत बड़ा माफ़ करनेवाला और दया करनेवाला है ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का मन द्रवित हो उठा, वे रो पड़े और दिल की

पूरी गहराई से यह आवाज़ निकली—

"ख़ुदा की क़सम ! मैं चाहता हूँ कि ख़ुदा मुझे माफ़ कर दे।" और क़ खाई कि अब मैं कभी भी उसकी मदद से हाथ न खींचूँगा ।

धन्य है बड़प्पन, धन्य है ऐसी उदारता और धन्य है अपने कट्टर से क दुश्मन को भी अपने पालनहार के हुक्म पर माफ़ कर देने की भावना !

सच्चा साथी

सन् 06 हि० में पैग़म्बरे इस्लाम ने 1400 साथियों के साथ काबे की ज़िय व तवाफ़ का इरादा किया । मक्का के क़रीब पहुँचे तो मालूम हुआ कि कु ने रास्ता रोक रखा है और यह प्रतिज्ञा की है कि आपको मक्के में घुसने न दें आपने ऐसा सुनत ही अपने तमाम साथियों से मशविरा माँगा । हज़रत अबू ब (रज़ि०) ने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल ! आप क़त्ल व ख़ून करने के लिए न बल्कि काबे के दर्शन के लिए ही यहाँ पधारे हैं, इसलिए चलिए जो कोई बा डालेगा, हम उससे लड़ेंगे । उनका यह सुझाव पसंद कर लिया गया । लोग अ बढ़े, यहाँ तक कि हुदैबिया में पड़ाव डाल दिया गया और दोनों फ़रीक़ों की उ से समझौते की बातचीत शुरू हो गई । इसी बीच यह मशहूर हो गया कि हज़ उसमान (रज़ि०), जो दूत बनाकर कुरैशियों के पास भेजे गए थे, शहीद कर ि गए । ऐसा सुनकर पैग़म्बरे इस्लाम ने तमाम साथियों को जमा किया और एक-ए करके हरेक से अल्लाह की राह में लड़ने, कटने और मरने का वचन लिया ता नुमाइन्दे को क़त्ल करने के साहस का मज़ा चखाया जाए ।

वस्तु स्थिति नाज़ुक दौर में दाख़िल हो गई थी । मुसलमान हज़रत उसमान (रज़ि के क़त्ल की घटना सुनकर उत्तेजित हो उठे थे । कुरैश ने जब ऐसी स्थिति दे तो डरे और नर्म पड़े ।

समझौते की बातचीत के लिए उरवा बिन मसऊद दूत बनकर आए । उन्हं बातचीत करते-करते जब यह कह दिया कि—

"मुहम्मद ! ख़ुदा की क़सम ! मैं तुम्हारे साथ ऐसे चेहरे और संदिग्ध लं पाता हूँ कि वक़्त पड़ेगा तो वे सब तुम्हें छोड़कर भाग जाएँगे ।" तो इतना सु ही आपके तमाम साथी बौखला उठे, यहाँ तक कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) जै ठंडे दिल व दिमाग़ के आदमी ने माथे पर बल देते हुए कहा—

"क्या हम अल्लाह के रसूल को छोड़कर भाग जाएँगे ?"

उरवा ने अनजान बनकर पूछा—"यह कौन है ?"

"अबू बक्र", लोगों ने कहा ।

"क़सम है उस सत्ता की, जिसके हाथ में मेरी जान है, अगर मेरे ऊपर तुम्हारा एहसान न होता तो मैं तुम्हारा कड़ाई से जवाब देता ।"

फिर हुदैबिया में जो समझौता हुआ, उसमें प्रत्यक्ष रूप से यही मालूम हो रहा था कि शत्रुओं के पक्ष व हित में संधि हुई है । ऐसा देखकर अधिकतर मुसलमान तो भीतर ही भीतर घुट उठे, यहाँ तक कि हज़रत उमर (रज़ि०) से भी न रहा गया और उन्होंने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से आकर कहा कि शत्रुओं से इतना दबकर क्यों संधि की जा रही है ? पर कैसी दृढ़ता थी हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) में, उन्होंने इस मर्म को पा लिया और कहा—"हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ख़ुदा के रसूल हैं, इसलिए आप उसकी अवज्ञा नहीं कर सकते और वह (अल्लाह) हर वक़्त आपका मददगार है ।"

इस संधि के बाद मक्कावालों से कुछ इतमीनान हुआ तो यहूदियों को उनके किए का मज़ा चखाने के लिए ख़ैबर पर मुसलमानों ने धावा बोल दिया । पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ही सेनापति थे, बाद में हज़रत अली (रज़ि०) को बना दिया गया और उन्हीं के हाथों ख़ैबर जीत लिया गया । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) इसी साल शाबान के महीने में बनू किलाब के दमन के लिए भेजे गए, वहाँ से सफलता के साथ वापस आए तो बनू फ़ुराज़ा की चेतावनी के लिए एक टुकड़ी के साथ भेजे गए और बहुत-से क़ैदी और माल के साथ वापस आए ।

मक्का विजय के बाद हुनैन की लड़ाई में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी शामिल थे और उन्होंने बड़ी ही दृढ़ता और वीरता के साथ दुश्मनों का मुक़ाबला किया ।

एक और कड़ी आज़माइश

सन् 09 हि० में मुसलमानों को एक कड़ी आज़माइश का सामना करना पड़ा । उस समय बराबर ऐसी सूचना मिल रही थी कि रूम का सम्राट क़ैसर अरब पर हमला करना चाहता है। चूँकि यह वह समय था जबकि बराबर लड़ाइयों व झड़पों की तैयारी में बैतुलमाल (राजकोष) लगभग ख़ाली हो गया था और ऐसे ही समय में रूमी सम्राट की यह चुनौती भी स्वीकार करनी पड़ी, इसलिए पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) ने इस बड़ी लड़ाई की तैयारी के लिए तमाम सहाबियों को अल्लाह की राह में ख़र्च करने पर उभारा । तमाम लोग अपनी-अपनी हैसियतों के मुताबिक़ इसमें शामिल हुए । हज़रत उसमान पैसेवाले थे इसलिए उन्होंने बहुत कुछ दिया, लेकिन तनिक देखिए तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का बलिदान और त्याग कि वे घर का पूरा सामान ही उठा लाए और आप(सल्ल०) के क़दमों पर डाल दिया ।

आपने पूछा, "अपने बाल-बच्चों के लिए क्या छोड़ा है ?"

"उनके लिए अल्लाह और उसका रसूल काफ़ी है ।" यह था उनका जवाब ।

बहरहाल मुसलमानों की एक बड़ी फ़ौज रूमी साम्राज्य से टक्कर लेने के लि तबूक के पास पहुँची । लेकिन वहाँ पहुँचकर यह मालूम हुआ कि वह ख़बर ग़ल थी, इसी लिए सब लोग वापस आ गए ।

इसी साल सन् 09 हि० में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि० को हज के नेतृत्व की ज़िम्मेदारी सौंपी और उनसे ऐसा एलान करने को कह दि कि इस साल के बाद कोई मुशरिक हज न करे और न कोई नंगे होकर काबे व तवाफ़ करे ।

सन् 10 हि० में पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) आख़िरी हज के सिलसिले में मक्क गए । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) भी साथ में थे । इस सफ़र से वापस आने व बाद आपने एक लम्बा-चौड़ा वक्तृव दिया, जिसमें कहा—

"ख़ुदा ने एक बन्दे को दुनिया और आख़िरत में से किसी एक को चुनने क अधिकार दिया था, लेकिन उसने दुनिया पर आख़िरत को प्रधानता दी ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ऐसा सुनते ही रोने लगे । लोग अचम्भे में पड़ गए आख़िर यह रोने का कौन-सा वक़्त है, लेकिन सच तो यह है कि वे इसकी त तक पहुँच गए थे और समझ गए थे कि बंदे से तात्पर्य स्वयं आप हैं—फिर ऐस ही हुआ कि इसके बाद ही आप बीमार हुए, रोग बढ़ता गया, हुक्म हुआ वि इमामत का काम हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) पूरा करें । हज़रत अबू बक्र (रज़ि० को सौंपी गई यह ज़िम्मेदारी एक ऐसी ज़िम्मेदारी थी कि जिससे साफ़ झलक रह था कि आगे भी पूरी जमाअत की इमामत (नेतृत्व) की ज़िम्मेदारी उठाने का हक़दा उनके अलावा और कोई न रहेगा और होता भी कैसे, शुरू से आख़िर तक रसू (सल्ल०) के क़दम-ब-क़दम चलनेवाले, इस्लाम के लिए अपना सब कुछ न्यौछाव कर देनेवाले, कठिन घड़ियों में इस्लाम के लिए ढाल बन जानेवाले, सच्ची लग और पक्की धुनवाले अबू बक्र (रज़ि०) ही रसूल के बाद इस्लाम की गाड़ी पू सूझ-बूझ और समझदारी के साथ सही रास्ते पर चला सकते थे ।

देखिए ना, कैसी थी वह नाज़ुक घड़ी—अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का देहान्त हो चुका है, पूरे राज्य में शोक की लहर दौड़ गई है, रसूल (सल्ल०) की एक-एव अदा पर क़ुरबान हो जानेवाले परवाने रसूल (सल्ल०) की मृत्यु पर चकित होक रह गए हैं, कुछ तो यहाँ तक कहने लगे कि रसूल (सल्ल०) मरे भी या नहीं यहाँ तक कि हज़रत उमर (रज़ि०) जैसे योद्धा व नेता नंगी तलवार खींचकर दरवाज़े पर खड़े हो गए हैं और चुनौती दे रहे हैं कि जिस किसी ने कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की मृत्यु हो गई, उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा

क हंगामा है जो जन्म ले चुका है, भय पैदा हो गया है कि कहीं अरबों की ाह जमाअत टुकड़े-टुकड़े न हो जाए, किसी बड़े बिगाड़ का शिकार न हो जाए, भरते हुए नए इस्लामी राज्य की नींव न खुद जाए— इस नाज़ुक घड़ी में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ही हैं जिन्होंने अपना सन्तुलन न खोया और अपने पक्के ईमान, ाही अक़ीदे और शुद्ध विचार के बल पर न हालात से घबराए, न परिस्थितियों ो डगमगाए और पहाड़ की तरह खड़े हो गए और अपने ख़ास अंदाज़ में पुकार-पुकारकर कहने लगे—

"अगर लोग मुहम्मद की पूजा करते थे तो इसमें शक नहीं कि वे मर गए और अगर ख़ुदा को पूजते थे तो इसमें शक नहीं कि वह ज़िन्दा है और कभी भी न मरेगा। अल्लाह का कथन है कि—"मुहम्मद सिर्फ़ एक रसूल हैं, इनसे पहले (ऐसे ही) बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने अपनी यह बात कुछ इस प्रकार रखी कि लोग प्रभावित हुए बिना न रह सके। ख़ास तौर पर उन्होंने जो आयत पढ़ी, वह कुछ ऐसी सही जगह पर फ़िट कर दी कि हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) के कथनानुसार हमें तो मालूम हुआ मानो यह आयत पहले कभी उतरी ही नहीं थी और आज ही उतरी है।

ऐसे ही पैग़म्बरे इस्लाम का देहान्त होते ही ख़िलाफ़त और नेतृत्व के लिए मदीने में बस रहे मुनाफ़िक़ों व शत्रु के एजेन्टों ने एक समस्या खड़ी कर दी और ऐसी वस्तुस्थिति पैदा कर दी कि इस्लाम की बनी-बनाई इमारत धड़ाम से ज़मीन पर आ रहती, लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की दूरदर्शिता और दूसरे नेताओं के सक्रिय भाग लेने से यह फ़ितना जड़ न पकड़ सका और एकमत होकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को ख़लीफ़ा चुन लिया गया।

इस्लामी राज्य के पहले ख़लीफ़ा

किसी राज्य का ख़लीफ़ा बन जाना और उसकी ज़िम्मेदारियों को बड़े ही अच्छे तरीक़े से निभाना कोई आसान काम नहीं, वह भी एक ऐसे राज्य की खिलाफ़त की ज़िम्मेदारी जो अभी नया वजूद में आया था, जिसकी बाग डोर अब तक एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में थी जो रसूल था, पैग़म्बर था और अपने पालनहार की ओर से जिसे क़दम-क़दम पर हिदायतें मिल रही थीं। सच तो यह है कि पैग़म्बरे इस्लाम की मृत्यु के बाद जिस तरह लोगों ने अपने होश व हवास खो दिए थे, उसमें जहाँ आपसे अथाह प्रेम लोगों में काम कर रहा था वहीं एक घबराहट लोगों को इसकी भी थी— रसूल (सल्ल०) के चले जाने के बाद रसूल (सल्ल०) के

इन अनुयायियों का क्या होगा, आपके सन्देश का क्या होगा और क्या होगा उस राज्य का जो अभी वजूद में आया है ? लेकिन यह हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का धैर्य था, यह उन्हीं का साहस था कि उन्होंने तमाम उठती और पैदा होती समस्याओं को इस तरह हल किया और रसूलुल्लाह (सल्ल०) के सिद्धान्तों व पालिसियों के सहारे इस्लामी राज्य की उखड़ती नींव को इतना दृढ़ बना दिया कि एक मुद्दत तक इस्लामी राज्य की इमारत में दरार तक न पड़ सकी ।

कैसी-कैसी समस्याएँ थीं, कितनी कठिनाइयों और संकटों का सामना था जिससे हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को दोचार होना था । एक ओर नुबूवत के झूठे दावेदारों से निपटना था, दूसरी ओर इस्लाम से विमुख विधर्मियों का बल तोड़ना था, तीसरी ओर एक गिरोह ने ज़कात देने से इनकार करके राज्य को दीवालिया करना चाहा, उन्हें समझाना था, चौथी ओर शाम (सीरिया) राज्य की शक्ति का मुक़ाबला था जिसके लिए उसामा बिन ज़ैद (रजि०) के नेतृत्व में सेना भेजनी थी, और ऐसी ही छोटी-बड़ी समस्याएँ उनके ख़लीफ़ा होते ही पैदा हो गई थीं जिन्हें पूरी दूरदर्शिता के साथ हल करना था ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इन समस्याओं को कैसे हल किया उसका विवरण आगे आ रहा है ।

हज़रत उसामा की रवानगी

इन्तिक़ाल से पहले हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने रूमियों के मुक़ाबले के लिए एक सेना को भेजने का हुक्म दिया था, जिसके सेनापति हज़रत उसामा बिन ज़ैद (रज़ि०) थे । इस सेना में मदीना और मदीना के आसपास के 700 सैनिक शरीक थे, लेकिन पैग़म्बरे इस्लाम की बीमारी के बढ़ जाने और फिर इन्तिक़ाल की वजह से यह सेना भेजी न जा सकी । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने ख़लीफ़ा होते ही सबसे पहला काम यही किया कि उसामा (रज़ि०) की सेना को रवानगी का हुक्म दे दिया । अभी सेना जमा हो रही थी और रवाना होने ही वाली थी कि अरबों के इस्लाम से विमुख होने और यहूदियों और ईसाइयों के साज़िशों की ख़बरें आने लगीं । ऐसी ख़बरें सुन-सुनकर मुसलमानों में खलबली-सी मच गई । एक तो प्रिय नेता की मृत्यु, दूसरे अरब मुसलमानों की विधर्मिता, तीसरे यहूदियों व ईसाइयों की साज़िश, फिर यह कि मुसलमानों की कमी और शत्रुओं की ज़्यादती— इन तमाम चीज़ों ने मिल-मिलाकर मुसलमानों के होश ही गुम कर दिए । मुसलमानों की हालत तो उस वक़्त उन बकरियों जैसी थी जो जाड़े की ठंडी और वर्षावाली रातों में मैदान ही में बिना किसी चरवाहे या मालिक के पड़ी हों । ऐसी परिस्थिति

सहाबियों ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को पूरी निष्ठा के साथ यह सुझाव दिया जों लोग उसामा(रज़ि०) की सेना में जा रहे हैं, वे मुसलमानों के चुने हुए लोग अरब के हालात आपके सामने हैं, ऐसी स्थिति में मुसलमानों को अलग फैला ा कुछ उचित नहीं दीख पड़ता, लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का जवाब देखिए, कैसी दृढ़ता है उनमें! कठिनाइयों से न घबरानेवाला कैसा साहस है में! और सबसे बड़ीं बात यह कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के प्रति कितनी अथाह द्धा है उनमें ! उन्होंने कहा—

"क़सम है उस सत्ता की जिसके हाथ में मेरी जान है, अगर मुझे यह मालूम हो कि हिंसक पशु मुझे उठा ले जाएँगे तो भी मैं रसूलुल्लाह के हुक्म को पूरा करने के लिए उसामा कीं सेना ज़रूर भेजता । अगर आबादियों में मेरे अलावा एक व्यक्ति भी बाक़ी न बचता तो भी मैं उस सेना की रवानगी का हुक्म ज़रूर देता ।"

ज़ाहिर है ख़लीफ़ा के हुक्म को कौन टालता । सेना जुर्फ़ के पड़ाव पर जमा गई । उन्होंने ख़लीफ़ा के पास हज़रत उमर (रज़ि०) की ज़बानी यह संदेश भेजा मुझे भय है कि मेरी रवानगी के बाद दुश्मन मदीने पर धावा बोल देंगे, इसलिए ार आप कहें तो सेना लेकर मदीना चला आऊँ । इसी के साथ अनसार ने भी ़ला भेजा कि आपको जब सेना भेजनी ही है तो उसामा (रज़ि०) के बजाए, उस समय केवल 19 साल के थे, किसी बड़े-बूढ़े को सेनापति बनाइए । लेकिन ष्ट है कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) परिस्थितियों से घबरानेवाले न थे । पहली त का जवाब तो ऊपर जैसा ही दिया लेकिन दूसरी बात पर तो वे मारे ग़ुस्से सुर्ख़ हो गए । खड़े हो गए और कहा—

"तुम्हें मौत आए, रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उसामा को सेनापति बनाया था, तुम मुझे सुझाव देते हो कि मैं उसे वहाँ से हटा दूँ ।"

इस जवाब के बाद वह जुर्फ़ के पड़ाव पर ख़ुद गए और सेना को जो हिदायतें हैं उससे उनके उच्च्च चरित्र का आसानी के साथ अन्दाज़ा किया जा सकता —

"ऐ लोगो ! खड़े हो जाओ, मैं तुम्हें दस चीज़ों का हुक्म देता हूँ । उन्हें मेरी र से अच्छी तरह याद रखना—

1. ख़ियानत न करना,
2. धोखा न देना,
3. सेनापति की अवज्ञा न करना,
4. किसी व्यक्ति का कोई अंग न काटना,

5. किसी बच्चे, बूढ़े या औरत को क़त्ल न करना,

6. खजूर या किसी और फलदार पेड़ को न काटना, न जलाना,

7. बकरी, गाय या ऊँट को खाने के अलावा किसी और ज़रूरत से न मारना,

8. तुम्हें ऐसे लोग मिलेंगे जो पूजाघरों में एकान्त बैठे होंगे, उन्हें उनके हा पर छोड़ देना,

9. तुम्हें ऐसे लोग मिलेंगे जो तुम्हारे पास भाँति-भाँति के खाने बरतनों में रखव लाएँगे, जब तुम इन खानों को एक-एक करके खाओ तो अल्लाह का नाम ले जाना,

10. तुम्हें ऐसी जाति मिलेगी जिसके सिर के बाल बीच में मुंडे होंगे और पट छूटे होंगे, उसे कोड़ों की सज़ा देना ।

अल्लाह का नाम लेकर कूच करो । अल्लाह तुम्हें दुश्मन के हथियारों अं ताऊन (प्लेग) के हमले से बचाए ।

यह सेना पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) की मृत्यु के ठीक 19 दिन बाद मदीने रवाना हुई थी और दो महीने के भीतर अपना काम करके वापस आ गई । इसं भेजने से और जो फ़ायदे हुए, वे तो हुए ही, एक सबसे बड़ा फ़ायदा यह हुअ कि अरब के दूसरे क़बीलों में मुसलमानों की बिगड़ती हुई साख फिर बैठ गई अं ऐसा समझा जाने लगा कि मुसलमान अब भी शक्तिशाली हैं, अगर उनके पा शक्ति न होती तो वे इस सेना को मदीने से बाहर क्यों भेजते ।

नुबूवत (ईशदूतत्व) के झूठे दावेदार

पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) ही के जीवन-काल में नुबूवत के कुछ झूठे दावेद पैदा हो चुके थे । मुसैलमा ने सन् 10 हि० ही से नुबूवत का दावा किया थ और आपको लिखा था कि मैं आपके साथ नुबूवत में शरीक हूँ, आधा संस आपका है, आधा मेरा । आपने इसके जवाब में लिखा—

> ''अल्लाह के रसूल मुहम्मद की ओर से सबसे बड़े झूठे मुसैलमा के नाम ! दुनिया अल्लाह की है, वह अपने बन्दों में से जिसे चाहेगा उसका वारिस बनाएगा, और सुफल तो परहेज़गार (संयमी) लोगों के लिए है ।''

इसी तरह आप के समय में ही और भी बहुत-से नुबूवत के झूठे दावेदार पैद हो गए थे और दिन-ब-दिन उनकी ताक़त बढ़ती ही जाती थी । तुलैहा बिन ख़्वालि ने अपने इलाक़े में नुबूवत का दावा किया तो क़बीला बनू ग़तफ़ान उसकी मद पर तैयार हो गया और उवैना बिन हसन फ़िज़ारी उसका सरदार था । ऐसे ही असव अनसी ने यमन में और मुसैलमा बिन हसीब ने यमामा में नुबूवत का दावा किया

ई तो मर्द ही थे, न जाने कहाँ से उस समय नबी बनने का ऐसा "पागलपन" त्रार हो गया था कि औरतें भी नुबूवत का दावा करने लगी थीं। सजाह बिन्त रिसा ने बड़ी धूम से अपनी नुबूवत का डंका पीटा और अशअस बिन क़ैस उसका ब्रसे बड़ा समर्थक था। सजाह नें आख़िर में अपनी ताक़त मज़बूत करने के लिए सैलमा से ब्याह भी कर लिया था।

इस फैलते हुए रोग को जड़ से उखाड़ फेंकने की कितनी बड़ी ज़रूरत थी इसका न्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) इससे चूक ाते यह सम्भव न था, अतएव उन्होंने ख़ासतौर पर इधर ध्यान दिया और सहाबियों मशविरा किया कि इस काम के लिए अधिक उचित व्यक्ति कौन होगा। हज़रत ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को इस काम के लिए चुना गया। इसलिए वे सन् 1 हि० में हज़रत साबित बिन क़ैस अनसारी (रज़ि०) के साथ मुहाजिरों और अनसार ी एक टोली लेकर नुबूवत के दावेदारों का उन्मूलन करने के लिए निकल खड़े ए।

हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) ने सबसे पहले तुलैहा की जमाअत पर मला किया। उसके अनुयायियों को क़त्ल कर दिया और उवैना बिन हसन को कड़वाकर 30 क़ैदियों के साथ मदीना भेजा। उवैना बिन हसन ने मदीना पहुँचकर स्लाम ग्रहण कर लिया, पर तुलैहा सीरिया की ओर भाग गया और वहाँ से क्षमा ाचना के लिए दो छंद लिखकर भेजे और इस्लाम को फिर से अपनाकर ईमानवालों दाख़िल हो गया।

झूठे मुसैलमा के उन्मूलन के लिए हज़रत शुरहबील बिन हसना (रज़ि०) भेजे ए और इससे पहले कि वे हमले की तैयारियाँ करें, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ि०) भी उनकी मदद के लिए पहुँच गए। उन्होंने मुआजा को हरा दिया। सके बाद ख़ुद मुसैलमा से मुक़ाबला हुआ। मुसैलमा ने अपने साथियों को लेकर ाड़े घमासान की लड़ाई लड़ी और मुसलमानों की बड़ी संख्या उसमें मारी गई जिसमें हुत-से तो क़ुरआन के हाफ़िज़ भी थे, पर आख़िर में जीत मुसलमानों ही की ही और झूठा मुसैलमा हज़रत वहशी (रज़ि०) के हाथों मारा गया। मुसैलमा की त्नी सजाह जो स्वयं नुबूवत की दावेदार थी, भागकर बसरा पहुँची और कुछ दिनों के बाद मर गई।

इसी तरह असवद अनसी को फ़ैस इब्न मकशूह (रज़ि०) और फ़ीरोज़ वैलमी रज़ि०) ने नशे की हालत में क़त्ल कर दिया।

एक ओर तो नुबूवत के ये दावेदार थे, दूसरी ओर अरब क़बीलों के बहुत-से सरदार ऐसे भी थे जो इस्लाम से विमुख हो गए और अपने-अपने हलक़ों के सरदार

बन बैठे । नोमान बिन मुनज़िर ने बहरैन में सिर उठाया, लक़ीत बिन मालिक उमान में द्रोह कर दिया। ऐसे ही कुंदा के इलाक़े में भी बहुत-से इस्लाम के इनका पैदा हो गए । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने नुबूवत के इन झूठे दावेदारों से निमटव ऐसे लोगों की ओर ध्यान दिया और अला बिन हज़रमी (रज़ि०) को बहरैन भेजव नोमान बिन मुनज़िर का ख़ात्मा कराया, हुज़ैफ़ा बिन मुहसिन (रज़ि०) की तलव से लक़ीत बिन मालिक को क़त्ल करा के उमान की भूमि को शुद्ध किया अं ज़ियाद बिन लुबैद (रज़ि०) द्वारा कुन्दा के विधर्मियों का उन्मूलन किया ।

ज़कात के इनकारियों को चेतावनी

नुबूवत के झूठे दावेदारों और इस्लाम से विमुख होनेवालों के अलावा उसी सम एक ऐसा गरोह भी पैदा हो गया था जो ज़कात का इनकारी था, चूँकि यह गिरो अपने को मुसलमान कहता था और ज़कात देने से इनकार कर रहा था, इसलि इसके ख़िलाफ़ तलवार उठाने के बारे में स्वयं मुस्लिम नेताओं में मतभेद हो गया इस मतभेद का अन्दाज़ा आप इसी से कर सकते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि०) जै दृढ़ निश्चयी लोगों ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से कहा कि आप एक ऐसे गिरो के ख़िलाफ़ कैसे लड़ाई लड़ सकते हैं जो अल्लाह को एक मानता है, मुहम्म (सल्ल०) को अल्लाह का रसूल समझता है, बस ज़कात देने से उसे इनकार है लेकिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का दृढ़ ईमान अपनी जगह से डिग न सका औ उन्होंने साफ़ कह दिया —

> "ख़ुदा की क़सम ! अगर बकरी का एक बच्चा भी, जो रसूलुल्लाह(सल्ल०) को दिया जाता था, कोई देने से इनकार करेगा, तो मैं उसके ख़िलाफ़ जिहाद करूँगा ।"

इस कड़ी पालिसी का नतीजा यह हुआ कि थोड़ी-सी चेतावनी के बाद ज़का के इनकारी ख़ुद ही ज़कात लेकर उनके पास हाज़िर हुए और फिर हज़रत उमर(रज़ि० को हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की दूरदर्शिता माननी पड़ी ।

क़ुरआन का संकलन

यह बात सभी जानते हैं कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर क़ुरआन मजीद थोड़ा-थोड़ करके 23 वर्ष तक बराबर उतरता रहा । बहुत-से सहाबी ऐसे थे जिन्हें पूरा क़ुरआ ज़बानी याद था और ऐसे सहाबियों की संख्या तो और भी अधिक थी जिन्हें क़ुरआ के बहुत-से हिस्से याद थे ।

नुबूवत के झूठे दावेदारों, इस्लाम से विमुख होनेवालों और ज़कात के इनकारिये

ो जब मुसलमानों को दो-चार होना पड़ा तो उन लड़ाइयों व झड़पों में क़ुरआन के बहुत-से हाफ़िज़ शहीद हो गए, ख़ास तौर पर यमामा की घमासान लड़ाइयों में इतने हाफ़िज़ काम आए कि हज़रत उमर (रज़ि०) को भय होने लगा कि सहाबियों के शहीद होने का ऐसा ही सिलसिला चलता रहा तो क़ुरआन मजीद का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जाएगा, ऐसा सोचकर उन्होंने पहले ख़लीफ़ा को क़ुरआन मजीद जमा करने और संकलित करने पर उकसाया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) शुरू में इस पर तैयार न थे, कहते कि जिस काम को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने नहीं किया है, उसे मैं कैसे करूँ। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) बार-बार इस पर उभारते रहे और बताते रहे कि इसका महत्व बहुत है। उनके बार-बार कहते रहने पर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़(रज़ि०) के मन में भी यह बात आ गई और उन्होंने हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) को जो पैग़म्बरे इस्लाम के समय में वह्य लिखा करते थे, क़ुरआन मजीद के जमा करने का हुक्म दे दिया। पहले वे भी ऐसा करने से झिझके, पर फिर बाद में इस की मसलहत समझ में आ गई और बड़ी कोशिश व देखभाल के बाद तमाम बिखरे हुए भागों को जमा करके एक पुस्तक के रूप में संकलित कर दिया।

यहाँ किसी को ऐसी ग़लतफ़हमी न होनी चाहिए कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने क़ुरआन को जमा करके उसे जो संकलित किया है, उसका अर्थ यह है कि नबी (सल्ल०) के समय में क़ुरआन मजीद की आयतों और सूरतों में कोई क्रम न था और न ही सूरतों के नाम रखे गए थे, यह सब कुछ व्यवस्थित रूप से हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के समय ही में हुआ, ऐसा समझना वास्तव में बहुत बड़ी भूल है। सच तो यह है कि क़ुरआन की आयतों में क्रम, सूरतों के नाम आदि सभी काम पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) ने अपनी निगरानी में कराए हैं और आपने क़ुरआन को एक क्रमवार व्यवस्थित पुस्तक के रूप में छोड़ा है। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का कारनामा तो बस इतना ही है कि उन्होंने बिखरे टुकड़ों और अलग-अलग चमड़ों आदि पर लिखे गए हिस्सों को जमा करके एक संकलित ग्रन्थ बना दिया, इसी को "सहीफ़ा सिद्दीक़ी" या "मसहफ़े सिद्दीक़" भी कहते हैं, अर्थात् हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की संकलित पुस्तक।

हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) द्वारा लिखी गई यह प्रति हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के ख़ज़ाने में सुरक्षित रही, इसके बाद हज़रत उमर (रज़ि०) के क़ब्ज़े में आई। हज़रत उमर ने इसे हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) के पास रखवा दिया और वसीयत की कि किसी को न दें, हाँ, जिसे नक़ल करना हो या अपनी प्रति ठीक करनी हो, वह इससे लाभ उठा सकता है। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने अपनी ख़िलाफ़त के समय में इसी की मदद से कुछ प्रतियाँ लिखवाई थीं और दूसरी जगहों पर भेजी

थीं । जब मरवान मदीने का गवर्नर बनकर आया तो उसने इस प्रति को हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) से लेना चाहा, लेकिन उन्होंने देने से इनकार कर दिया और मरते दम तक अपने पास रखे रहीं । उनकी मृत्यु के बाद मरवान ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर(रज़ि०) से लेकर उसे नष्ट कर दिया ।

ईरान, रूम और इस्लाम

किसी भी राज्य की समस्याएँ दो प्रकार की हुआ करती हैं, एक तो उसकी अपनी अन्दरूनी समस्याएँ, दूसरी उसकी बाह्य या अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ ।

राज्य की अन्दरूनी समस्याओं के सम्बन्ध में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कितने सतर्क थे, इसका अन्दाज़ा पिछले पृष्ठों को पढ़ने के बाद किया जा सकता है रही उसकी बाह्य समस्याएँ, तो इस ओर से भी यह जागरूक ख़लीफ़ा कुछ कम सतर्क न था । अपने राज्य की साख बनाए रखने, बाहरी दुश्मनों से देश की रक्षा करने, साथ ही इस्लाम का पवित्र सन्देश दूसरे राज्यों तक पहुँचाने के लिए हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने जो कोशिशें की हैं, वे थोड़ी मुद्दत में और उस वक़्त के हालात को देखते हुए कुछ कम सराहनीय नहीं हैं ।

बेहतर है, इस सिलसिले की कोशिशों के विस्तार में जाने से पहले उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी एक नज़र डाल ली जाए ।

उस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो बड़े साम्राज्यों का ही बोलबाला था ।

एक था ईरानी साम्राज्य, और

दूसरा था रूमी साम्राज्य ।

ईरानी साम्राज्य

ईरानी राज्य बहुत ही पुराना राज्य था, संस्कृति व सभ्यता के अनुसार भी बहुत पुराना । किसी विदेशी को ईरान पर शासन करने का कोई मौक़ा ही नहीं मिला सिकन्दर रूमी ने दारा को हराकर कुछ मुद्दत के लिए ईरान पर ज़रूर क़ब्ज़ा कर लिया, पर यह क़ब्ज़ा ज़्यादा दिनों तक बाक़ी न रह सका । उस समय अफ़ग़ानिस्तान व इराक़ भी ईरानी राज्य में शामिल थे । यहाँ के शासक की हैसियत "शहनशाह" (सम्राट) की थी और सूबों के गवर्नरों को, जो अन्दरूनी मामलों में आज़ाद होते थे, "बादशाह" कहा जाता था । शहनशाह को किसरा की उपाधि भी मिली हुई थी ।

ईरान के आख़री ज़माने में 'सासानी वंश' राज्य करता था । इस वंश की बुनियाद उर्दशेर बाबकान ने 230 ई० में डाली थी । सासानी वंश की राजधानी 'मदायन

शहर था जो दजला के पूर्वी व पश्चिमी किनारों पर आबाद था । पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) के जन्म के समय सासानी वंश का प्रसिद्ध न्यायी बादशाह किसरा नौशेरवाँ शासन कर रहा था । किसरा नौशेरवाँ के बाद उसका बेटा हुरमुज़ सिंहासन पर बैठा, हुरमुज़ के बाद किसरा परवेज़ को उसके बेटे शेरवैह ने क़त्ल कर दिया और वह ख़ुद बादशाह बन बैठा । शेरवैह ने 1 साल 9 महीने तक शासन किया और इस थोड़ी सी मुद्दत में अपने परिवारवालों को तरह-तरह की पीड़ाएँ दीं । अन्त में उसे मार डाला गया । उसके बाद उसका बेटा उर्दशेर राजगद्दी पर बिठाया गया। उम्र में छोटे होने की वजह से एक अधिकारी को उसका परामर्शदाता बनाया गया, पर यह इन्तिज़ाम एक दूसरे अधिकारी शहरबज़ार शा को पसन्द न आया । शहरबज़ार ने मदायन पर चढ़ाई करके बादशाह को क़त्ल कर दिया और ख़ुद बादशाह बन बैठा । शहरबज़ार चूँकि शाही परिवार से न था, इसलिए 40 दिन की हुकूमत के बाद वह भी क़त्ल कर दिया गया । अब किसरा परवेज़ की बेटी बोरान दुख़्त के सिर पर ताज रखा गया । पैग़म्बरे इस्लाम(सल्ल०) के आख़िरी वक़्त में यही ईरान पर शासन कर रही थी । एक साल चार महीने हुकूमत करने के बाद यह भी मर गई । बोरान दुख़्त के बाद किसरा परवेज़ के चचेरे भाई जवाँशेर को तख़्त पर बिठाया गया, पर वह भी एक महीने से ज़्यादा न रह सका । इसके बाद किसरा परवेज़ की दूसरी बहन अज़रमी दुख़्त सत्तारूढ़ हो गई, पर उसे एक ईरानी सेनापति रुस्तम ने अपने बाप के बदले में क़त्ल कर दिया और उसकी जगह उर्दशेर बाबकान के वंश में से किसरा बिन मेहर को पदासीन किया गया, पर यह कुछ दिनों से ज़्यादा न रहा और आख़िर में यज़्दगुर्द बिन शहरयार को ईरानी राज्य का सम्राट चुना गया, जो इस ज़ंजीर की आख़िरी कड़ी थी । हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त में ईरान का यह विस्तृत साम्राज्य उसके हाथ से निकलकर इस्लामी राज्य का अंग बन गया ।

रूमी साम्राज्य

सिकन्दर यूनानी के विश्वव्यापी राज्य के बाद यूरोप में जो दूसरा बड़ा राज्य स्थापित हुआ, वह रूमियों का था । इसकी राजधानी "रूमा" शहर था । एक वह समय था कि जब भारत, ईरान, चीन और तुर्किस्तान को छोड़कर पूरा संसार रूमी साम्राज्य का एक अंग था और जिसे "ग्रेट रोमन एम्पायर" के नाम से याद किया जाता था, लेकिन कुछ दिनों के बाद सन् 395 ई० में आपसी लड़ाइयों की वजह से रूमी राज्य के दो टुकड़े हो गए—पूर्वी रूम और पश्चिमी रूम । पश्चिमी रूम की राजधानी "रूमा" रही और पूर्वी रूम की राजधानी "कुस्तुन्तुनिया" नगर हुआ । पश्चिमी रूमी राज्य पर यूरोप और रूस की जंगली जातियों ने बार-बार

हमले किए और अन्त में वह कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया, पर पूर्वी रूमी राज्य इन हमलों से बचा रहा और बराबर तरक़्क़ी करता रहा । इस राज्य में यूरोप के कुछ भाग के अलावा एशिया माइनर, सीरिया और मिस्र भी शामिल थे ।

इस्लाम के शुरू में रूमी साम्राज्य का शासक "हिरक़्ल" था । यह पहले "अफ़्रीक़ा" का गवर्नर था । सन् 610 ई० में उसने क़ैसर[1] "ख़ूका" को क़त्ल कर दिया और सिंहासन पर विराजमान हो गया । क़ैसर हिरक़्ल का शासन-काल सन् 600 से 641 ई० तक रहा ।

उस समय के ये थे दो बड़े साम्राज्य और ख़ास बात यह है कि दोनों में विस्तारवादी और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पाई जाती थी, इसलिए वे एक दूसरे से भी लड़ते रहते थे ये लड़ाइयाँ सरहदों पर सीरिया और इराक़ के इलाक़ों में होती रहतीं । इन में कभी ईरानी जीतते और कभी रूमी ।

इस्लाम आने से कुछ ही दिन पहले किसरा नौशेरवाँ और क़ैसर ख़ूका की सेनाओं में एक लम्बी लड़ाई हुई थी । इस लड़ाई में ईरानियों की लगातार विजय होती रही । उन्होंने रूमियों को "ज़ंज़ीरा" से निकाल दिया और 'फ़ीनीकिया' और पलस्टाइन का नाश करते हुए वास्फ़ारस के तटों तक पहुँच गए, इसके बाद ईरानियों ने हिरक़्ल के समय में रूमियों पर दोबारा हमला किया और बैतुल्मक़्दिस का विनाश करके सलीब (Cross) की लकड़ी छीन लाए । फिर इसके बाद मिस्र पर चढ़ाई की और स्कन्दरिया को जीत लिया ।

फिर कुछ ही सालों के बाद सन् 622 ई० में हिरक़्ल ने ईरानियों पर भारी हमला किया और मार्च सन् 624 ई० में ठीक उस समय जबकि मुसलमान बद्र के मैदान में अरब के मुशरिकों पर विजय होने की ख़ुशियाँ मना रहे थे, रूमी ईरानियों पर विजय-पताका फहरा रहे थे । रूमियों की इस विजय के बाद सन् 628 ई० में शेरवह ने क़ैसर हिरक़्ल से सन्धि कर ली, तमाम रूमी क़ैदियों को छोड़ दिया और सलीब (Cross) की लकड़ी वापस कर दी ।

ईरानी हों या रूमी, दोनों का फ़ायदा इसमें था कि अरब जैसी वीर जाति सैकड़ों टोलियों में बँटी रहे और आपस ही में टकरा-टकराकर अपनी शक्ति क्षीण करती रहे । जब रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने सफ़ा पर्वत की चोटियों से सत्य की आवाज़ उठाई और पूरी दुनिया को एक घराना बनने और आपस में प्रेम-व्यवहार करने की ओर लोगों को बुलाया तो उन्होंने इस नए आन्दोलन को शक की निगाह से देखा और ऐसा महसूस किया मानो इस्लाम की यह बढ़ती हुई ताक़त एक न एक

1. क़ैसर रूमी सम्राटों की उपाधि थी।

न उनके राज्य तक पहुँचकर रहेगी और उन्हें परास्त होना पड़ेगा । ऐसा सोचते उनके मन विद्वेष से भर उठे । यही कारण है कि जब सन् 6 हि०[1] में पैग़म्बरे स्लाम (सल्ल०) ने किसरा परवेज़ को पत्र भेजा तो उसने आव देखा, न ताव, सके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और अपने यमन के गवर्नर बाज़ान को हुक्म दिया क अरब में जिस व्यक्ति ने नबी होने का दावा किया है उसे गिरफ़्तार करके मेरे ास भेज दो । बाज़ान ने शहनशाह के हुक्म की तामील में दो आदमी मदीना जे । रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उन आदमियों से कहा, "जाओ तुम्हारा शहनशाह, जसने मेरी गिरफ़्तारी का हुक्म दिया था, क़त्ल कर दिया गया । याद रखो, मेरा र्म वहाँ तक विजित होकर पहुँचेगा जहाँ तक तुम्हारे किसरा का राज्य है, बल्कि हाँ तक कोई ऊँट या घोड़ा पहुँच सकता है ।"

बाज़ान के आदमी यह जवाब सुनकर लौट आए । यहाँ आकर मालूम हुआ क पैग़म्बरे इस्लाम ने जो कुछ कहा था, बिलकुल सही था । किसरा परवेज़ को सके बेटे शेरवैह ने क़त्ल कर दिया था और बाज़ान को सन्देश भेजा था कि रे बाप ने हिजाज़ से जिन साहब को बुलाया था, उनसे छेड़ख़ानी न की जाए । सके बाद ईरान में भीतरी झगड़े इतनी जड़ पकड़ गए कि फिर किसी को अरब की ओर ध्यान देने का मौक़ा न मिला ।

ऐसे ही उसी साल जब पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) ने रूम के क़ैसर को बैतुलमक़्दिस में इस्लामी सन्देश का पत्र भेजा तो राज्याधिकारियों, मन्त्रियों और दूसरे सेनानियों ने घोर विरोध के साथ उसे रद्द कर दिया और जब इस्लामी दूत लौटने लगे तो शीरिया के ईसाइयों ने उनका माल व असबाब लूट लिया ।

शुरहबील, जो रूमियों की ओर से "बसरा" का गवर्नर था, पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) ने उसके पास पत्र भेजा । उस निष्ठुर ने न सिर्फ़ यह कि इस्लामी सन्देश को मानने से इनकार कर दिया, बल्कि आप के दूत "हाफ़िज़ बिन उमैर" को क़त्ल कर डाला ।

सन् 09 हि० में बसरा के गवर्नर ने रूम के क़ैसर की मदद के लिए मदीने पर हमले की तैयारियाँ कीं, पर जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ख़ुद ही अपने 30,000 योद्धाओं के साथ, ईसाइयों से मुक़ाबले के लिए तबूक पहुँचते तो उनकी हिम्मतें टूट गईं और वे मुक़ाबला करने का साहस न जुटा सके ।

यह थी वह वस्तुस्थिति जिससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस्लामी राज्यके ये दोनों साम्राज्य कितने घोर शत्रु थे और इनकी ओर से सन्तोष करके बैठना

---

1. सन् हिजरी का आरम्भ हिजरत के साथ हुआ है ।

कुछ कम ख़तरनाक बात न थी । वे जिस समय भी मौक़ा पाएँगे हमला कर बैठें ऐसा भय मुसलमानों को हर समय रहता था ।

इराक़ पर धावा

हम लिख चुके हैं कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने ख़लीफ़ा बनने के बाद सबसे पहला काम किया वह यही था कि तत्काल उठी हुई समस्याओं को ह किया । उधर से निबटने के बाद उनका ध्यान इन दोनों साम्राज्यों की ओर गया अभी वे ईरानियों के अत्याचारों से मुसलमानों को मुक्त कराने की योजना ब ही रहे थे कि इसी बीच हज़रत मुसन्ना (रज़ि०) इराक़ से मदीना आए और हज़ अबू बक्र (रज़ि०) से कहा—

"अगर आप मुझे क़बीले का प्रधान (अमीर) बना दें तो मैं मुसलमानों क उन ईरानवासियों की शरारतों से बचा सकता हूँ जो मेरी सरहद पर हैं ।''''

हज़रत मुसन्ना (रज़ि०) की यह बात मंज़ूर कर ली गई और उन्होंने वापस जाक ईरानियों से झड़पें शुरू कर दीं, इस तरह बड़ी हद तक उधर के अत्याचारों में क हो गई । लेकिन इतने ही से काम चलनेवाला न था, हज़रत अबू बक्र (रज़ि० ने हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को बुलाया और उन्हें 10,000 सेना के साथ ईरानि के मुक़ाबले के लिए रवाना किया । इस सेना के अलावा 8,000 सिपाही हज़र मुसन्ना (रज़ि०) और उन चार सरदारों के पास भेजे जो पहले से ईरानियों के मुक़ाब में लड़ रहे थे । इस तरह कुल 18,000 सेना इराक़ के मुक़ाबले में आगे बढ़ी हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को यह हिदायत थी कि इराक़ के निचले हिस्से से बढ़क सबसे पहले उबल्ला पर हमला करें । यह जगह लगभग वही थी जहाँ अब बस आबाद है । दूसरी टुकड़ी को हिदायत थी कि इराक़ के ऊपरी हिस्से से हमल करें और दोनों टुकड़ियाँ जीतती हुई हीरा पर आकर मिल जाएँ और उक्त नग पर एक साथ हमला करें । जिस टुकड़ी का प्रधान वहाँ पहले पहुँचेगा वही सेनापति होगा । जब हीरा पर विजय प्राप्त हो जाए तो सेना का एक हिस्सा वहाँ रुकक पीछे के हमले का बचाव करे और दूसरा हिस्सा ईरान की राजधानी मदायन प चढ़े । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को यह भी हिदायत थी कि खेती करनेवाली जनत को परेशान न होने दें, उन्हें पूरी शान्ति के साथ ज़मीन पर क़ाबिज़ रहने दें औ किसी तरह का भी कष्ट न पहुँचाएँ । मुक़ाबला केवल उन लोगों से किया जाए जो मैदान में आकर लड़ें ।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की टुकड़ी सन् 12 हि० में रवाना हुई। सबसे पहले उबल्ला की ओर रुख़ किया । यह ईरान के बन्दरगाहों में सबसे अधिक और सुरक्षित

बन्दरगाह थी । हुरमुज़ ईरानी राज्य के पहले दर्जे के गवर्नरों में से था, जिसकी निशानी यह थी कि वह लाख रुपये की क़ीमत का ताज पहनता था । लड़ाई से पहले हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने हुरमुज़ के नाम एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने इस्लाम की सत्यता, न्याय-मार्ग अपनाने आदि के बारे में लिखा। हुरमुज़ ने यह पत्र पढ़कर किसरा और उसके उत्तराधिकारी को सूचना दी । फिर कुछ ही दिनों में वह बड़ी तेज़ी के साथ "उड़ना, कम्पो" लेकर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) के मुक़ाबले में चला, सबसे पहले काज़िमा पहुँचा । मालूम हुआ कि मुसलमान हफ़ीर में हैं, वहाँ पहुँचा तो इस्लामी सेना के सेनापति ने काज़िमा पर अपना पड़ाव डाल लिया । इस दौड़ भाग में ईरानी सेना काफ़ी थक-थका गई । काज़िमा के पड़ाव पर ईरानी सेना पानी के किनारे ठहरी । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) हुरमुज़ की ख़बर सुनकर मुक़ाबले पर आए । लड़ाई शुरू हो जाने पर हुरमुज़ ने धोखा देने के लिए घात के मौक़े पर कुछ आदमियों को छिपाकर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को अपने मुक़ाबले पर बुलाया । वे जैसे ही पहुँचे, वैसे ही आदमियों ने पहुँचकर उनपर वार किया, हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने उनका वार ख़ाली कर दिया और पूरी वीरता के साथ हुरमुज़ पर हमला करके उसे क़त्ल कर डाला । हुरमुज़ के क़त्ल के बाद तो और भी अधिक घमासान की लड़ाई हुई । अन्त में ईरानी सेना परास्त हुई । मुसलमान विजयी हो गए । विजय की यह ख़बर मदीना पहुँची तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने हुरमुज़ का ताज हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) को दिला दिया ।

हफ़ीर की लड़ाई के बाद मदार की लड़ाई हुई जो पहले से भी ज़्यादा घमासान की थी । किसरा के हुक्म से नई-नई टुकड़ियाँ मदायन से आकर इसमें शरीक हुई थीं, पर विजय मुसलमानों को ही प्राप्त हुई । इसी तरह तावड़-तोड़ 12 जगहों पर और भी लड़ाइयाँ हुईं । इराक़ चूँकि ईरानियों का मुख्य प्रदेश था और ईरान की राजधानी "मदायन" इसी में स्थित थी, इसलिए ईरानियों ने बड़ी ही वीरता से मुसलमानों का मुक़ाबला किया, पर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की तलवार के सामने उन्हें हर जगह सिर झुकाना पड़ा । इस्लामी सेनापति ने इतनी तेज़ी और कामयाबी से हमले किए कि शत्रु को साँस लेने की मुहलत न मिली और कुछ ही दिनों में मैदान साफ़ हो गया ।

अनोखी बात तो यह है कि इतनी लड़ाइयाँ लड़ने और उनमें सफल होने के बावजूद इसी थोड़ी-सी मुद्दत में हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने प्रशासनिक प्रबन्ध भी किए, कर्मचारी नियुक्त किए, टैक्सों की वसूली का इंतिज़ाम किया, काश्तकारों और ज़मींदारों से लगान के समझौते किए । ईरानियों ने शुरू में इन विजयों को अरब की मामूली लूट-मार समझा था, पर जब मुसलमानों का संकल्प, न्याय और व्यवहार देखा तो अपने-अपने घरों को बड़े ही इतमीनान के साथ वापस चले गए ।

हर परगने और इलाक़े के रहनेवालों ने अपने नुमाइन्दे भेजकर जिज़ये के समझौते किए और समझौतों के बाद पूरे इतमीनान के साथ कारोबार में लग गए ।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने सैनिक व प्रशासनिक प्रबन्धों को एक-दूसरे से अलग कर रखा था । सैनिक अधिकार अलग थे और प्रशासनिक अलग । यही कारण है कि पहली लड़ाई के बाद जिसमें हुरमुज़ काम आया, सेना के कप्तान हज़रत सईद बिन नोमान (रज़ि०) और प्रशासनिक अधिकारी सुवैद बिन मुकरिम (रज़ि०) नियुक्त किए गए । सुवैद (रज़ि०) को हिदायत की गई कि अपने मातहत कर्मचारियों को नियुक्त कर लें । जिन परगनों के रहनेवाले मुक़ाबले पर नहीं आए, उनसे छेड़ख़ानी नहीं की गई और शान्तिपूर्वक लगान का इन्तिज़ाम कर लिया गया ।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की बेहतरीन व्यवस्था की गवाही इससे बढ़कर और क्या हो सकती है कि 50 दिन के भीतर ही अधिकृत भाग का टैक्स वसूल होकर ख़ज़ाने में दाख़िल हो गया, जिससे मुसलमानों को आगे की लड़ाइयों में बड़ी मदद मिली । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) का नियम यह था कि जहाँ पहुँचते थे, सबसे पहले इस्लाम का सन्देश पहुँचाते थे, अगर यह बात वहाँ के लोगों को स्वीकार न होती तो जिज़िया माँगते, इससे भी इनकार होता तो लड़ाई का एलान कर देते । जिज़िया "हीरा-सन्धि" में चार दिरहम प्रति व्यक्ति था (अर्थात् एक रुपया) । यह योगियों और संन्यासियों और गरीबों से नहीं लिया जाता था । जिज़िया के बदले में मुसलमानों की ओर से उनकी रक्षा का वादा होता था और समझौते में इसकी व्यवस्था कर दी जाती थी कि अगर हम तुम्हारी रक्षा न कर सकेंगे तो जिज़िया भी न लेंगे । इन लड़ाइयों में बड़ी सावधानी से काम लिया जाता और साथ ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को हर छोटी-बड़ी घटना की सूचना रहती थी, इसका अन्दाज़ा निम्न घटना से कीजिए —

मज़ह की लड़ाई में जब मुसलमानों ने रात में हमला कर दिया तो दो मुसलमान भी जो शत्रुओं में रहते थे, काम आए—एक का नाम था अब्दुल उज़्ज़ा और दूसरे का लबीद । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने जब यह घटना सुनी तो दोनों का ख़ून-बहा (ख़ून का जुर्माना) उनके वारिसों को दे दिया और हुक्म दिया कि उनके सम्बन्धियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए, उसी के साथ यह भी कहा —

"इसकी ज़िम्मेदारी मेरे सिर नहीं है जबकि वे ऐसी जगह ठहरे हुए थे, जहाँ से लड़ाई चल रही है ।" हीरा पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने हीरा को अपना हेडक्वार्टर बनाया, वहीं से चारों ओर प्रबन्ध किए जाते । इराक़ की लड़ाई के सिलसिले में ख़लीफ़ा के हुक्म इस तरह थे कि जब हीरा पर ऊँचाई की ओर निचले हिस्से की दोनों इस्लामी सेनाएँ जमा हो जाएँ तो एक टुकड़ी का कप्तान हीरा में रुके और दूसरा राजधानी मदायन की ओर आगे बढ़े । हज़रत

ख़ालिद (रज़ि०) अपनी लड़ाइयाँ ख़त्म करते हुए हीरा पहुँच गए पर हज़रत अयाज़ (रज़ि०) इस तेज़ी से न ख़त्म कर सके । इसलिए उन्हें ख़लीफ़ा के हुक्म के मुताबिक़ दौमतुलजुन्दल तक जाना पड़ा । इसी सिलसिले में हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) कर्बला की छावनी तक गए । उस वक़्त मुसलमानों की लड़ाई का सिलसिला दजला के किनारे तक पहुँच चुका था । मुसन्ना बिन हारिसा (रज़ि०) मदायन के कुछ मोर्चों पर लड़ रहे थे । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) कुछ दिनों तक कर्बला में ठहरे रहे, सिर्फ़ इसलिए कि जिन छावनियों का ख़ाली कराना अयाज़ के सुपुर्द था, उन्हें जीतकर अरबों के कब्ज़े मे दे दें, ताकि मुसलमानों का पिछला हिस्सा सुरक्षित हो जाए और आने-जाने का सिलसिला बिना किसी भय के जारी रहे, यही हुक्म ख़लीफ़ा का भी था ।

रमज़ान के महीने में दौमतुलजुन्दल आदि की लड़ाइयाँ ज़ीतकर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) फ़िराज़ पहुँचे, जहाँ ईरान, सीरिया और जज़ीरे की सीमाएँ मिलती हैं । वहीं पर उन्होंने ईद की नमाज़ पढ़ी । फ़िराज़ में मुसलमानों के इस तरह जमा होने पर रूमियों को जोश और ग़ुस्सा आया और उन्होंने ईरान की छावनियों, अरब काफ़िरों के क़बीलों आदि से मदद लेकर मुसलमानों के मुक़ाबले का इरादा कर लिया । तग़लब आदि क़बीले रूमी सीमा पर आबाद थे और उनमें मुसलमानों के ख़िलाफ़ पहले से ही ग़ुस्सा भरा हुआ था । इस तरह रूमी, ईरानी और अरब सबने संयुक्त मोर्चा बनाकर मुसलमानों पर धावा बोल दिया । फ़रात के किनारे दोनों सेनाएँ इकट्ठा हुईं, मुक़ाबला हुआ और विजय ने मुसलमानों के क़दम चूमे । इसके बाद हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) 10 दिन तक फ़िराज़ में ठहरे रहे, फिर मक्का पहुँचकर हज करते हुए हीरा को वापस हो गए ।

सीरिया की लड़ाई

जैसे ईरानी साम्राज्य की सरहदें अरब राज्य की सरहदों से मिली हुई थीं, वैसे ही रूमी साम्राज्य की सरहदें भी अरब की सरहदों को छू रही थीं । इस्लाम और इस्लामी राज्य की बढ़ती शक्ति को अगर ईरानवालों ने एक बड़ा ख़तरा समझा तो रूमवाले भी इस "ख़तरे" को पहले ही भाँप चुके थे । पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद(सल्ल०) के समय ही से रूमी सरहदों पर तोड़-फोड़ और झड़पें शुरू हो गई थीं और दूर तक देखनेवाली निगाहें देखने लगी थीं कि यह साम्राज्य इस्लाम की उभरती शक्ति को कैसे भी सहन करने के लिए तैयार नहीं है । मौता की लड़ाई और तबूक़ की तैयारी इसी बात का सबूत है कि रूमी साम्राज्य की कुदृष्टि इस्लाम और मुसलमानों पर विशेष रूप से पड़ने लगी थी ।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) पहले ही दिन से रूमी साम्राज्य की इस चाल क
भाँप रहे थे । अतएव इराक़ पर विजय पाने के बाद सबसे पहले हज़रत ख़ालि
बिन सईद (रज़ि०) के नेतृत्व में एक टुकड़ी भेजी और उन्हें हुक्म दिया कि तीम
नामक स्थान पर पहुँचकर पड़ाव डाल दें और दोबारा हुक्म पाने तक आगे न बढ़ें
ख़ुद हमला न करें, उधर से हमला हो तो उसका मुक़ाबला करें । हज़रत ख़ालि
बिन सईद (रज़ि०) ने हुक्म के मुताबिक़ तीमा पहुँचकर पड़ाव किया । रूमी सम्रा
क़ैसर हिरक़्ल भला ख़बर पाते ही कैसे चुप बैठा रहता, उसने भी मुक़ाबले क
तैयारियाँ शुरू कीं और रूमी फ़ौजें तीमा से तीन मंज़िल के फ़ासले पर जमा होन
शुरू हो गईं । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को परिस्थिति से अवगत कराया गय
तो हुक्म आया —

"आगे बढ़ो, रुको मत और अल्लाह से मदद चाहो ।"

इस हिदायत के मुताबिक़ मुसलमानों ने धावा बोल दिया और शत्रुओं को पराजय
का मुँह देखना पड़ा । रूमियों की छावनी पर मुसलमानों का क़ब्ज़ा हो गया औ
कोई फ़ायदा हुआ हो या न हुआ हो, इस झड़प का शुभ परिणाम यह निकल
कि रूमियों की ओर से जो क़बीले मुक़ाबले पर आगे बढ़े थे, वे मुसलमान हे
गए । फिर हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) अपनी टुकड़ी के साथ बढ़े । इसी बीच यमन
उमान, बहरैन और दोहा में विधर्मियों को ठिकाने लगानेवाली चार इस्लामी फ़ौजे
भी वहाँ से छुट्टी पा चुकी थीं । इन चारों बटालियनों के कमाण्डर थे हज़रत अब
उबैदा, शुरहबील इब्न हसना, यज़ीद बिन अबू सुफ़ियान और अम्र बिन आस (रज़ि०)
मुसलमानों की इन चारों फ़ौजों की कुल तादाद लगभग 27,000 थी । हज़रत
अबू बक्र (रज़ि०) ने इन सेनाओं को भी सीरिया की सरहदों पर लगा दिया, हर
टुकड़ी के लिए एक सेनापति नियुक्त किया और उन्हें उसकी दिशा भी बता दी
जैसे हज़रत अबू उबैदा बिन जर्राह (रज़ि०) को हिम्स की ओर, अम्र बिन आस
(रज़ि०) को फ़लिस्तीन की ओर, यज़ीद बिन अबी सुफ़ियान (रज़ि०) को दिमिश्क़
की ओर और शुरहबील बिन हसना (रज़ि०) को जोर्डन की ओर भेजा । हज़रत
ख़ालिद बिन सईद (रज़ि०) की टुकड़ी भी इन्हीं सेनाओं से मिल गई ।

सुन्दर उपदेश

जब ये सेनाएँ भेजी जा रही थीं तो ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक (रज़ि०)
ख़ुद उन्हें विदा करने के लिए कुछ दूर तक पैदल आए फिर सेनापति को बहुत-सी
बातें नोट कराईं, जिनमें से कुछ ये हैं—

(1) हर हाल में अल्लाह से डरना, वह बातिन को भी वैसे ही देखता है जैसे

ज़ाहिर को ।

(2) अपने मातहतों से अच्छा व्यवहार करना ।

(3) जब उन्हें कुछ बताना तो थोड़े में बताना, क्योंकि जब बात लम्बी होती है तो उसका एक हिस्सा दूसरे को भुला देता है ।

(4) पहले अपने आपको सुधारना, दूसरे स्वयं ही सुधार की ओर झुकेंगे ।

(5) जब तुम्हारे पास शत्रुओं के दूत आएँ तो उनका आदर करना ।

(6) अपने भेदों को छिपाना, ताकि तुम्हारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न न हो ।

(7) सदा सच बात कहना ताकि सही सुझाव मिले ।

(8) रात को अपने साथियों की सभाओं में बैठना, ताकि तुम्हें हर प्रकार की सूचनाएँ मिलती रहें ।

(9) सेना में पहरेदारी की अच्छी व्यवस्था करना, कभी-कभी अचानक पहुँच कर पहरेदारी के काम की निगरानी भी करते रहना ।

(10) झूठों की संगत से बचना और सच्चे वफ़ादार साथियों का संग पकड़ना ।

(11) जिनसे भी मिलना निष्ठापूर्वक मिलना और कायरता आदि से बचना ।

(12) तुम कुछ लोगों को देखोगे कि संसार से कटकर अपने पूजाघरों में बैठे हैं, उनसे कदापि न उलझना और उन्हें उनके हाल पर छोड़ देना ।

इसके बाद इस्लामी सेना के चारों सेनापति अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर सीरिया की ओर चल पड़े । हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) ने बलक़ा पर, शुरहबील बिन हसना (रज़ि०) ने बसरा पर और अम्र बिन आस (रज़ि०) ने अरव्वा पर पहुँचकर पड़ाव डाला और वहीं मोर्चा बना लिया । जब सीरियावालों को यह ख़बर मिली कि मुसलमानों ने उनके राज्य को घेर लिया है तो वे बहुत परेशान हुए और अपने सम्राट हिरक़्ल क़ैसर से सहायता चाही । हिरक़्ल को मालूम था कि मुसलमानों की सेना चार हिस्सों में बँटकर चार जगह मोर्चा बना रही है तो उसने भी हर हिस्से के मुक़ाबले के लिए अलग-अलग सेनाएँ अपने चार सेनापतियों की मातहती में भेजीं । स्पष्ट रहे कि उसकी सेना संख्या में इस्लामी सेना से कहीं अधिक थी । हिरक़्ल का भाई तज़ारुक़ 90,000 सेना के साथ अम्र बिन आस (रज़ि०) के मुक़ाबले के लिए, जर्जीरबन तोदर 50,000 सेना के साथ यज़ीद (रज़ि०) के मुक़ाबले के लिए, क़ीक़ार बिन नस्तूस 60,000 सेना के साथ अबू उबैदा (रज़ि०) के मुक़ाबले के लिए और दराक़स 40,000 सेना के साथ शुरहबील (रज़ि०) के मुक़ाबले के लिए चला ।

जब मुसलमानों को मालूम हुआ कि उनकी सेना के हर हिस्से के मुक़ाबले के लिए उससे कई-कई गुनी रूमी सेना आ रही है तब भय हुआ कि इस तरह कहीं

मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में ख़त्म न हो जाएँ तो उन्होंने अम्र बिन आस (रज़ि० से राय माँगी ।

अम्र बिन आस (रज़ि०) ने कहा—

"मेरी राय है कि हम सबको इकट्ठा हो जाना चाहिए, ऐसी स्थिति में हम संख्या की कमी की वजह से परास्त न होंगे ।"

सभी ने अम्र बिन आस (रज़ि०) की राय से सहमति प्रकट की । फिर ख़लीफ़ा से इजाज़त भी ले ली गई । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इजाज़त दे दी और यह भी लिख भेजा कि—

"मुसलमानों को संख्या की कमी के कारण कभी परास्त न होना चाहिए, हाँ अगर वे गुनाहों में घिर जाएँ तो परास्त हो जाएँगे, इसलिए उन्हें गुनाहों से बचना चाहिए ।"

सम्राट हिरक़्ल को मालूम हुआ कि इस्लामी सेनाएँ इकट्ठा हो गई हैं तो उसने भी अपनी सेना को इकट्ठा होने का हुक्म दिया । इस तरह सभी सेनाओं ने यरमूक़ की घाटी के किनारे क़ाक़ूसा नामक स्थान पर अपना मोर्चा जमा लिया । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के हुक्म के अनुसार इस्लामी सेनाएँ भी रूमी सेनाओं के सामने जमा हो गईं और उन्होंने रूमियों का रास्ता रोक लिया । इस तरह लगभग दो महीने तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने पड़ी रहीं और किसी को एक दूसरे पर हमला करने की हिम्मत न हुई ।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) भी मिल गए

सैनिक दृष्टिकोण से रूमियों की उस समय स्थिति मज़बूत थी क्योंकि उनके सामने नदी थी और पीछे पहाड़, साथ ही उनकी संख्या भी अधिक थी, इसलिए मुसलमानों ने ख़लीफ़ा से अर्ज़ किया कि उनको कुमक भेजी जाए । वहाँ से ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को हुक्म हुआ कि वे इराक़ से सीरिया को चले जाएँ । वे मुसन्ना बिन हारिसा (रज़ि०) को अपना नायब बनाकर और 10,000 की सेना लेकर बड़ी तेज़ी से यरमूक़ की ओर चल पड़े ।

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने पूरी स्थिति की जाँच की जब उन्हें यह मालूम हुआ कि—

(क) रूमी सेना इस्लामी सेना से संख्या में कहीं अधिक है,

(ख) रूमी सेना सामरिक नियमों के अनुसार व्यवस्थित है,

(ग) मुसलमान संख्या में भी कम हैं और फिर जितने हैं, एक झंडे तले भी नहीं हैं, इसलिए भय है कि लड़ाई लम्बी हो जाए और फिर भी शत्रु को हानि

न पहुँचाई जा सके तो उन्होंने इस्लामी सेना के सरदारों को इकट्ठा किया और फ़रमाया—

"यह लड़ाई एक महान धार्मिक लड़ाई है । आज हमें घमण्ड को और सेनापति की अवज्ञा को दिल से निकाल देना चाहिए और सिर्फ़ अल्लाह की राह में अपनी कोशिशें लगा देनी चाहिएँ । देखो, शत्रु अपनी बेहतरीन व्यवस्था और क्रम के साथ लड़ाई के मैदान में मौजूद हैं और तुम अव्यवस्थित व बिखरे हुए हो । तुम्हारा यह बिखरा हुआ होना तुम्हारे लिए शत्रु के हमले से अधिक हानि पहुँचानेवाला है और शत्रु के लिए उसकी मदद से कहीं अधिक लाभप्रद है । बेहतर यह है कि पूरी फ़ौज एक सेनापति की कमान में दे दी जाए और इस पद को बारी-बारी बाँट लिया जाए । एक दिन एक सेनापति हो, दूसरे दिन दूसरा । अगर यह राय पसन्द है तो आज मुझे सेनापति बना देना ।"

घमासान से घमासान लड़ाइयों में सदा विजयी रहनेवाले हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) के इस प्रस्ताव को, जो हर एतबार से उचित व लाभप्रद था, कौन ठुकराता, सभी ने एकमत होकर उनके इस प्रस्ताव को मान लिया और उन्हें सेनापति बना दिया गया ।

दोनों ओर की सेनाएँ सजीं । लड़ाई के समय इस्लामी सेना की कुल संख्या 36,000 थी जबकि रूमी सेना की संख्या 2,40,000 तक पहुँच गई थी, अर्थात रूमी सेना इस्लामी सेना की लगभग सात गुनी थी ।

एक अनोखी घटना

लड़ाई के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ बिलकुल तैयार खड़ी हैं । आर्डर मिलने की देर है और घमासान की लड़ाई छिड़ जानेवाली है कि इतने में एक घटना घटती है—एक अनोखी घटना । सत्य और असत्य में अन्तर कर देनेवाली घटना, आँखें खोल देनेवाली घटना । आप इसे पढ़िए और देखिए कि सत्य किस-किस तरह शत्रुओं के मन में भी घर कर जाता है और शत्रु की पंक्तियों में खड़ा होनेवाला नामी व्यक्ति किस तरह इस्लाम की गोद में आ गिरता है ।

फ़ौजें तैयार खड़ी हैं कि रूमियों का सरदार जर्जा मैदान से निकलता है और ललकार कर कहता है "ख़ालिद हमारे सामने आएँ" । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) आगे बढ़ते हैं और एक दूसरे को शरण देने के बाद आपस में इस तरह बातचीत करते हैं—

"अल्लाह ने तुम्हारे नबी के पास आसमान से तलवार भेजी थी, वह तुम्हें दी गई और उसका असर है कि तुम हर जगह विजयी रहते हो ?"

"नहीं ।"

"फिर तुम्हें सैफ़ुल्लाह (अल्लाह की तलवार) की उपाधि क्यों मिली ?"

"अल्लाह ने अपने नबी को हमारे पास भेजा । उन्होंने इस्लाम हमारे सामने पेश किया, पहले तो हम सब उससे दूर भागे, फिर कुछ ने उसकी पुष्टि कर दी और मुसलमान हो गए और कुछ दूर-दूर रहकर ही झुठलाते रहे । मैं उन झुठलानेवालों में से एक था । इसके बाद अल्लाह ने हमारे दिलों को फेर दिया, गर्दनें झुका दीं और सीधा रास्ता दिखाया । मैंने भी नबी (सल्ल०) का आज्ञापालन स्वीकार कर लिया । उस वक़्त आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

'ऐ ख़ालिद ! तू अल्लाह की तलवारों में से एक तलवार है जो मुशरिकों के मुक़ाबले के लिए म्यान से निकली है ।'

नतीजा यह हुआ कि अब मैं तमाम मुसलमानों में सबसे ज़्यादा मुशरिकों का शत्रु हूँ ।"

"तुमने सच कहा, अच्छा अब यह बताओ कि इस्लाम का सन्देश क्या है ?"

"इस बात का मानना कि अल्लाह के अलावा कोई उपास्य नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) उसके बँदे और रसूल हैं और उस संदेश की पुष्टि जो वह अल्लाह की ओर से लाए ।"

"अगर उसको कोई न माने ?"

"जिज़िया दे ।"

"ऐसा भी स्वीकार न करे ?"

"हम पहले लड़ाई का एलान करेंगे ।"

"जो तुम में शामिल हो उसका स्थान ?"

"अल्लाह का हुक्म है कि सब मुसलमान दर्जे में बराबर हैं, भले ही बड़े हों या छोटे, पहले के हों या बाद के ।"

"जो आज ईमान लाए वह भी दर्जे में बराबर होगा ?"

"बराबर होगा, बल्कि उससे भी ऊँचा ।"

"यह कैसे ?"

"हम जब मुसलमान हुए तो पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) जीवित थे, वह्य के आने का सिलसिला जारी था, आप आसमानी हुक्मों की ख़बर देते थे, हम प्रत्यक्ष चमत्कार व गुणों को अपनी खुली आँखों से देख लेते थे । ऐसी स्थिति में हमारा मुसलमान होना अनिवार्य था, आज तुम उन बातों को नहीं देखते, फिर भी ईमान लाते हो तो तुम हमसे श्रेष्ठ ही हो ।"

"तुम क़सम खाकर कह रहे हो कि तुमने मुझसे तमाम बातें सच कही हैं ?

खा नहीं दिया है ? दिल रखनेवाली बात नहीं की है ?"

"अल्लाह की क़सम ! न मैंने झूठ कहा, न मुझे तुमसे या किसी से घृणा है । तुमने पूछा, उसका सच-सच जवाब मैंने दे दिया । अल्लाह मेरा मददगार है ।"

"निस्सन्देह तुमने सच ही कहा है ।"

इतना कहते ही जर्जा ने अपनी ढाल पीछे डाल दी और कहा—

"मुझे मुसलमान बना लो ।"

हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) जर्जा को डेरे में ले जाते हैं ताकि उन्हें नहला-धुला र मुसलमान बनाएँ, तो इसी बीच रूमियों की सेना क़ाबू से बाहर हो जाती है ीर आम धावा बोल देती है । जब हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) जर्जा के साथ बाहर ाते हैं तो देखते हैं कि यहाँ मुसलमानों पर रूमी सेना चढ़ दौड़ी है । बस फिर ा है, घमासान लड़ाई शुरू हो जाती है और तलवारों से तलवार बजने लगती । इसी बीच देखनेवाली आँखें देखती हैं कि वही जर्जा जो सुबह तक मुसलमानों ा कट्टर दुश्मन था, अब रूमियों के ही घोर शत्रु बन बैठे हैं और अन्त में शहीद जाते हैं । कैसी विचित्र है विधि की यह विडम्बना और कैसा है सत्य का गहरा भाव ।

नतीजा वही निकला जो निकलना चाहिए—सत्य की जीत असत्य की हार । ूरे दिन सूर्य ने यरमूक़ पर इस्लामी ध्वजा को फहराते देखा और देखा कि मुसलमानों ी इस विजय ने रूमी साम्राज्य की जड़ें हिला दी हैं और रूम पर इस्लाम की जय के दरवाज़े खुलते जा रहे हैं ।

राजधानी का दूत

लड़ाई अभी चल रही थी कि इसी बीच इस्लामी राज्य की राजधानी मदीना एक ऐसा दूत आया जिसके हाथ में हज़रत उमर (रज़ि०) का हज़रत ख़ालिद ज़ि०) के नाम एक पत्र था और साथ ही यह शोक समाचार भी कि इस्लामी ज्य के पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) स्वर्गवासी हो गए ।

"इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।"

(निश्चय ही हम सब अल्लाह ही के लिए हैं और हमें उसी की ओर लौट र जाना है।)

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का देहान्त 15 दिन बीमार रहने के बाद 21 जमादिउल ख़रा सन् 13 हि० की शाम को 63 साल की उम्र में हुआ । उनकी ख़िलाफ़त ी मुद्दत कुल दो वर्ष तीन महीने दस दिन रही ।

उत्तराधिकारी का चुनाव

किसी भी राज्य के कुशल शासक के उत्तराधिकारी को खोज निकालना स ही एक बड़ी समस्या रही है, ख़ास तौर से शुरू के इस्लामी ख़लीफ़ों के लिए जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के रोग ने ज़ोर पकड़ लिया तो लोगों की यही इच्छ हुई कि वे अपना उत्तराधिकारी स्वयं ही नियुक्त कर दें, वरना बाद में मतभेद सकता है । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) तो इस मसले पर सोचते ही थे, उन्होंने इ बारे में वरिष्ठ साथियों से मशविरे लिए और इसी नतीजे पर पहुँचे कि हज़रत उम (रज़ि०) को ख़लीफ़ा बनाना चाहिए ।

कुछ लोगों ने जिन्हें हज़रत उमर (रज़ि०) के स्वभाव की तीव्रता का भय थ अपने इस विचार को प्रकट किया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने जवाब दिर कि उमर की सख़्ती इसी कारण थी कि वे मेरी नर्मी को जानते थे । मेरा तजु है कि जब मैं ग़ुस्से में होता तो वे ग़ुस्सा दूर करने की कोशिश करते, नर्मी देख तो सख़्ती का सुझाव देते ।

मशविरे के बाद जब बात पक्की हो गई तो एक दिन हज़रत अबू बक्र (रज़ि० ऊपर चढ़े । कमज़ोरी की वजह से चढ़ने की शक्ति न थी । उनकी पत्नी हज़र असमा बिन्त उमैस (रज़ि०) उन्हें हाथों से सम्भाले हुए थीं। नीचे लोग इकट्ठ थे । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—

"क्या तुम उस व्यक्ति को पसन्द करोगे जिसे मैं उत्तराधिकारी बनाऊँ, उसे ख़ू समझ लो और क़सम खाकर कहता हूँ कि मैंने सोच-विचार करने में कोई कम नहीं की और न ही मैंने अपने किसी सगे-सम्बन्धी को ही नियुक्त किया है । उमर बिन ख़त्ताब को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करता हूँ, तुम मेरा कहा सुन और मानो ।"

सबने कहा, "हमने सुना और माना ।"

इसके बाद नीचे उतर आए और हज़रत उसमान (रज़ि०) को बुलाकर सन्धि-प लिखवाया जो इस प्रकार था—

"यह अबू बक्र बिन अबी क़हाफ़ा के अन्तिम जीवन का वसीयतनामा है जबकि वह इस लोक से विदा हो रहा है और परलोक में दाख़िल हो रहा है.....मैंने उम बिन ख़त्ताब (रज़ि०) को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, इसलिए उनका हुक सुनो और मानो । अच्छी तरह समझ लो कि इस बारे में अल्लाह, उसके रसूल उसके धर्म और स्वयं अपनी और तुम्हारी भलाई का हक़ अदा करने में मैंने पू कोशिश की है । अगर वे न्याय से काम लेंगे तो उनके बारे में मेरा यही विचा है और मैं यही जानता भी हूँ और अगर वे बदल गए तो हर व्यक्ति अपनी करन

को भोगेगा । वैसे मेरी नीयत ठीक है, आगे की नहीं जानता । जो लोग अन्याय करेंगे, वे जल्द देख लेंगे कि वे किस पहलू पर पलटा खा रहे हैं और तुम पर शान्ति व अल्लाह की दया व कृपा है ।"

इस सन्धि-पत्र के लिखे जाने और प्रसारित कर दिए जाने के बाद एक व्यक्ति ने आकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से कहा कि आपने उमर को उत्तराधिकारी नियुक्त किया है, हालाँकि आप जानते हैं कि वे लोगों से आपके सामने कैसा व्यवहार करते हैं, उस समय क्या होगा जबकि वे अकेले रह जाएँगे । आप अपने पालनहार से मिलने जा रहे हैं, वह आप से जनता के बारे में प्रश्न करेगा । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) उस समय लेटे थे । ऐसा सुनते ही कहा, मुझे बिठा दो । बैठ गए तो कहने लगे—

"क्या तुम मुझे अल्लाह से डराते हो ? मैं जिस वक़्त अल्लाह के सामने जाऊँगा और मुझसे पूछा जाएगा, तो मैं बताऊँगा कि पालनहार ! मैं तेरे माननेवालों में से एक बेहतर व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी बनाकर आया हूँ ।"

इसके बाद हज़रत उमर (रज़ि०) को एकान्त में बुलाया और जो समझाना था समझाया, फिर हाथ उठाकर दुआ की—

"ऐ अल्लाह ! मैंने यह चुनाव सिर्फ़ मुसलमानों की भलाई के इरादे से किया है और इस भय को सामने रखकर किया है कि इन में बिगाड़ न पैदा हो जाए । मैंने ऐसा काम किया है जिसे तू अच्छी तरह जानता है । मैंने बहुत सोच-विचार के बाद राय बनाई है, उमर सबसे अच्छे और मुसलमानों के अधिक हितैषी हैं । मेरे लिए तेरा जो हुक्म आना था, आ चुका, अब मैं उनको तेरे सुपुर्द करता हूँ । वे तेरे बन्दे हैं और उनकी लगाम तेरे हाथ में है । ऐ अल्लाह ! उनके उत्तराधिकारियों को योग्यता दे, उत्तराधिकारी को सन्मार्ग पर चल रहे ख़लीफ़ों में से बना और उनको इबादत की क्षमताएँ दे ।"

इसी तरह एक दिन जबकि बीमारी चल ही रही थी, पूछा कि मुझे बैतुलमाल (राजकोष) से अब तक कुल कितना वज़ीफ़ा मिला है ? हिसाब किया गया तो छः हज़ार दिरहम (लगभग 1500 रु०) था । हुक्म दिया कि मेरी अमुक ज़मीन बेचकर बैतुलमान का रुपया वापस दे दिया जाए । अतएव सब ज़मीन बेचकर रुपया वापस दे दिया गया ।

उसी समय यह भी मालूम कराया गया कि ख़लीफ़ा बनने के बाद मेरे माल में क्या बढ़ोतरी हुई । मालूम हुआ कि—

(1) एक हब्शी दास है जो बच्चों की देख-रेख करता है और वही मुसलमानों की तलवारों पर पालिश करता है,

(2)दो ऊँटनी है जिस पर पानी लदकर आता है और,

(3) एक सवा रुपए की चादर है।

वसीयत की कि मरने के बाद ये तमाम चीजें दूसरे ख़लीफ़ा के पास पहुँचा दी जाएँ ।[1] मृत्यु के बाद जब ये चीज़ें हज़रत उमर (रज़ि०) के पास आईं तो रोने लगे और कहा—"ऐ अबू बक्र ! आप अपने उत्तराधिकारियों के लिए काम बहुत कठिन कर गए ।"

मरने से कुछ पहले अपनी बेटी हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) को कितने कपड़ों का कफ़न दिया गया था, कहा, "तीन कपड़ों का ।" वसीयत की कि मेरे कफ़न में भी तीन कपड़े हों, दो चादरें जो मेरी देह पर हैं, धोली जाएँ और एक कपड़ा नया ले लिया जाए ।

बेटी ने कहा—"अब्बा जान! हम इतने तंगदस्त नहीं हैं कि नया कपड़ा न ख़रीद सकें ।"

उत्तर दिया—"बेटी ! नए कपड़े मुर्दों के मुक़ाबले में ज़िन्दों के लिए अधिक उचित हैं । कफ़न तो पीप और ख़ून के लिए है ।"

कैसा था हज़रत अबू बक्र (रज़ि०), इस्लामी राज्य के पहले ख़लीफ़ा, का जीवन ! आदर्श !! और महान आदर्श !!!

कुछ और कारनामे

पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के ख़िलाफ़त की मुद्दत कुल सवा दो साल ही थी, पर इस थोड़ी-सी मुद्दत में उन्होंने जैसे-जैसे कारनामे अनजाम दिए, उसका उदाहरण मिलना कठिन है । इस्लाम की नाव को कठिन घड़ियों से उबारा, इस्लामी राज्य को राष्ट्रद्रोहियों के हाथों टुकड़े-टुकड़े होने से बचाया और एक ऐसे राज्य की नींव डाली कि जिसका झंडा बाद में आधे संसार पर फहराने लगा । आप कह सकते हैं कि दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि०) की ख़िलाफ़त में बड़े-बड़े काम अनजाम दिए गए, बड़े-बड़े मारके जीते गए, यहाँ तक कि रूम व ईरान के दफ़्तर उलट दिए गए, पर तनिक इस पर भी तो विचार कीजिए कि इसकी नींव कहाँ पड़ी ? देश ने ये साहसपूर्ण क़दम कब उठाए ? शासन में व्यवस्था व संगठन की बुनियाद किसने रखी और सबसे बढ़कर यह कि स्वयं इस्लाम को मंझधार से किसने उबारा ? क्या हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के अलावा भी किसी का नाम लिया जा सकता है ।

1. स्पष्ट रहे कि ख़लीफ़ा बनने से पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) एक सफल व्यापारी थे।

ख़िलाफ़त-व्यवस्था

इस्लामी ख़िलाफ़त या लोकतन्त्र की बुनियाद सबसे पहले हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने डाली। इसी से अन्दाज़ा कीजिए कि स्वयं उनका चुनाव जनता द्वारा हुआ था और उनके समय में जितने बड़े-बड़े काम अनजाम पाए थे सबमें बड़े और मान्य सहाबियों की रायें व मशविरे शामिल थे। यही वजह है कि उन्होंने तजुर्बे और राय रखनेवाले सहाबियों को राजधानी से कभी हटने नहीं दिया। हज़रत उसामा (रज़ि०) की सेना में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ख़ुद हज़रत उमर (रज़ि०) को रखा था, लेकिन उन्होंने हज़रत उसामा (रज़ि०) को तैयार किया कि हज़रत उमर (रज़ि०) को राय व मशविरे में मदद देने के लिए छोड़ जाएँ। ऐसे ही सीरिया पर हमला करने का मामला रहा हो या ज़कात के इनकारियों के मुक़ाबले में जिहाद करने का विचार, हर अहम मामले में बड़े सहाबियों की राय मालूम करना और उनके मशविरों पर क़दम उठाना, ऐसा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का आजीवन अमल रहा। यह दूसरी बात है कि उनके समय में मजलिसे शूरा (सलाहकार परिषद) की कोई नियमित व्यवस्था न थी।

इब्न साद (रज़ि०) का कथन है —

"जब कोई मामला पेश आता था तो हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) रायवाले और ज्ञानी सहाबियों से मशविरा कर लेते थे और मुहाजिरों और अनसारियों में से कुछ ऊँचे लोगों को जैसे हज़रत उमर (रज़ि०), उसमान (रज़ि०), अली (रज़ि०), अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि०), मुआज़ बिन जबल (रज़ि०) उबई बिन काब (रज़ि०) और ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) को तो अवश्य ही बुलाते थे।"

शासन-व्यवस्था

शासन को लोकतन्त्र की बुनियाद पर चलाने के साथ-साथ शासन क्षेत्र में सीमित होने के बावजूद, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने शासन-व्यवस्था को भी ठीक-ठाक रखने पर पूरा बल दिया। उन्होंने अरब को अनेकों सूबों व ज़िलों में बाँट दिया था, जैसे—मदीना, मक्का, तायफ़, सनआ, नजरान, हज़रमौत, बहरैन और दौमतुलजन्दल आदि। हर सूबे का एक गवर्नर होता था जो हर ज़िम्मेदारी निभाता था, यानी वही एडमिनिस्ट्रेटर (Administrator) भी होता था और जज (Judge) भी। उन्होंने कुछ प्रमुख विभाग राजधानी में भी स्थापित कर रखे थे जिनके अलग-अलग ज़िम्मेदार हुआ करते थे। जैसे हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) सीरिया के सेनापति बनाए जाने से पहले वित्त अधिकारी थे, हज़रत उमर (रज़ि०) क़ाज़ी थे और हज़रत उसमान (रज़ि०) व हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) आफ़िस सिक्रेटी थे।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) जब किसी को कोई ज़िम्मेदारी देते या किसी पद पर नियुक्त करते तो साधारणत: पहले उसे बुलाते, उसकी ज़िम्मेदारियों की व्याख्या करते और बड़ी ही प्रभावकारी भाषा में अच्छी व सुन्दर रीति-नीति अपनाने को कहते । जैसे यज़ीद बिन सुफ़ियान (रज़ि०) को सीरिया की ओर भेजते हुए उन्होंने ये शब्द कहे —

"ऐ यज़ीद ! तुम्हारी नातेदारियाँ हैं, शायद तुम उन्हें अपनी अफ़सरी से फ़ायदा पहुँचाओ, वास्तव में यही सबसे बड़ा ख़तरा है, जिससे मुझे डर है । अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि जो कोई मुसलमानों का हाकिम बनाया जाए और वह उनपर केवल रियायत करके किसी को अफ़सर बना दे तो उसपर अल्लाह की धिक्कार हो, अल्लाह उसका कोई बहाना और उसके बदले का कोई भी प्रतिदान स्वीकार न करेगा, यहाँ तक कि उसे जहन्नम में दाख़िल कर देगा ।"

अधिकारियों पर कड़ी निगरानी

किसी भी राज्य में कैसा भी सुगठित व सुव्यवस्थित क़ानून चल रहा हो, अगर उसके अधिकारियों व ज़िम्मेदार अफ़सरों की कड़ी निगरानी की व्यवस्था न की जाए तो तय है कि शासन-व्यवस्था ढीली-ढाली हो जाएगी । इसी से तो स्वभाव के एतबार से नम्र होने के बावजूद भी हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने शासन-व्यवस्था को बेहतर बनाए रखने के लिए बड़ी निगरानी और कठोर जाँच-पड़ताल व पूछ-ताछ का सहारा लिया । देखिए ना, यमामा की लड़ाई में मुजाआ हनफ़ी ने, जो झूठे मुसैलमा का सेनापति था, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) को धोखा देकर मुसैलमा की पूरी जाति को मुसलमानों के प्रभाव से बचा लिया । हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) ने इस ग़द्दारी पर उसे सज़ा देने के बजाए उसकी लड़की से शादी कर ली । चूँकि इस लड़ाई में बहुत से सहाबी शहीद हुए थे, इसलिए हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने हज़रत ख़ालिद (रज़ि०) की इस "उदारता" पर बड़ा रोष प्रकट किया और लिखा—

"तुम्हारे तम्बू के डोरों के पास मुसलमानों का ख़ून बह रहा है और तुम शादी के चक्कर में पड़े हुए हो ?"

ऐसे ही अपराधियों के साथ निजी तौर पर नम्र व्यवहार करने में हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अधिक प्रसिद्ध थे, पर पूरे राष्ट्र के चरित्र की निगरानी व देख-भाल के लिए इसे भी ज़रूरी समझते थे कि अपराधियों को उनके अपराध की पूरी सज़ा दी जाए । कहाँ एक ओर उनकी नम्रता का हाल यह था कि नबी (सल्ल०) के ज़माने ही में असलम क़बीले के एक व्यक्ति ने उनके सामने ग़द्दारी सरीखे अपराध

ो स्वीकार किया, इस पर उन्होंने कहा—

"तुमने मेरे अलावा किसी और से भी इसका वर्णन किया है ?"

"नहीं", उसने कहा ।

"अल्लाह से तौबा करो", हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) बोले, "और इसको छिपाए खो, अल्लाह भी इसे छिपाएगा क्योंकि वह अपने बन्दों की तौबा क़बूल करता : ।"

पर उसने ऐसा नहीं किया और उसे इसकी सज़ा भुगतनी पड़ी ।

और जनहित को सामने रखते हुए दूसरी ओर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का ाल यह था कि अशान्ति फैलानेवालों और द्रोहियों को बड़ी ही कठोर सज़ाएँ ते थे । उस ज़माने में अब्दुल्लाह बिन अयास सलमी प्रसिद्ध डाकू था जिसने रे देश में अशान्ति फैला रखी थी । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने तरीफ़ा बिन आमिर (रज़ि०) को भेजकर उसे गिरफ़्तार कराया और सख़्त सज़ा देने का हुक्म देया ।

फ़तवा-विभाग

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने जीवन के तमाम पहलुओं में इस्लामी क़ानून को लागू करने के लिए फ़तवा-विभाग भी क़ायम किया था और हज़रत उमर, उसमान, अली अब्दुर्रहमान बिन काब और ज़ैद बिन साबित (रज़ि०) को, जो अपने ज्ञान व सूझ-बूझ में तमाम लोगों से आगे थे, इस काम पर नियुक्त किया । इनके सिवा किसी और को फ़तवा देने की इजाज़त न थी ।

ग़ैर मुस्लिम प्रजा के अधिकार

नबी (सल्ल०) के समय में इस्लाम के अलावा दूसरे धर्म के माननेवालों को इस्लामी राज्य में सन्धि पत्रों द्वारा जो अधिकार दिए गए थे, हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने न सिर्फ़ उन अधिकारों को बाक़ी रखा, बल्कि अपनी मुहर व हस्ताक्षर से फिर उसकी पुष्टि की । स्वयं उनके समय में जिन देशों पर विजय प्राप्त की गई, ग़ैर मुस्लिम जनता को लगभग वही अधिकार दिए गए जो मुसलमानों को प्राप्त थे । हियरावालों से जो सन्धि हुई उसके ये शब्द भी इसी पर गवाही देते हैं —

"उनकी ख़ानक़ाहें और गिरजे गिराए न जाएँगे और न कोई ऐसा क़िला गिराया जाएगा जिसमें वे ज़रूरत के वक़्त शत्रुओं के मुक़ाबले में क़िलाबन्द होते हैं । शंख और घंटे बजाने की रोक न होगी और न त्यौहार के मौक़ों पर क्रास (Cross) निकालने से रोके जाएँगे ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के समय में जिज़िया या टैक्स (Tax) की दर बहु
आसान थी और उन्हीं लोगों से लिया जाता था जो उसके अदा करने की क्षमः
रखते हों । इसी से हियरा के 7,000 निवासियों में से 1,000 निवासी छूट ।
थे और बाक़ी पर केवल दस-दस दिरहम वार्षिक टैक्स लगाया गया था । सन्धि-पः
में यह शर्त भी थी कि कोई ज़िम्मी (ग़ैर मुस्लिम) बूढ़ा, अपंग और ग़रीब ः
जाएगा तो उसे जिज़िया से छूट दे दी जाएगी ।

दूसरे कारनामे

हज़रत अूब बक्र (रज़ि०) के दूसरे कारनामों में से एक सबसे बड़ा कारनाम
यह है कि उन्होंने अपनी सेना को प्रशिक्षित (Trained) करने का उचित प्रबन
किया और एक-एक सिपाही के मन में यह बात बिठा दी कि उसका लड़ाई ः
उठा हुआ हरेक क़दम अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए होगा, इसमें न तो उसक
कोई स्वार्थ होना चाहिए और न किसी प्रकार का लोभ । देखिए ना, सीरिया कं
ओर जाती हुई सेना को कैसे-कैसे आदेश दिए । आपने कहा —

"तुम ऐसी जाति को पाओगे जिसने अपने आपको अल्लाह की इबादत के
लिए वक़्फ़ कर दिया है, उसे छोड़ देना । मैं तुम्हें दस बातों की वसीयत करत
हूँ —

(1, 2, 3) किसी औरत, बच्चे और बूढ़े को क़त्ल न करना,

(4) फलदार पेड़ को न काटना,

(5) किसी आबाद जगह को वीरान न करना,

(6) बकरी और ऊँट, खाने के अलावा ज़िब्ह न करना,

(7) नख़लिस्तान (मरुद्यान) न जलाना,

(8) ग़नीमत के माल में से बिना इजाज़त कोई चीज़ न लेना, और

(9) भीरुता (कायरता) से काम न लेगा ।"

सेना की ट्रेनिंग के समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अपने बुढ़ापे और कमज़ोरी
के बावजूद ख़ुद ही छावनियों का मुआयना करते थे और सिपाहियों में भौतिक
या आध्यात्मिक, जिस रूप में भी कोई त्रुटि दिखाई पड़ती थी, उसका सुधार कर
देते थे ।

निजी जीवन

इस्लाम से पहले का जो युग था, उसके बारे में सभी जानते हैं कि न सिर्फ़

अरबों के विश्वास में त्रुटि पैदा हो गई थी, बल्कि उनके चरित्र-आचरण में भी बड़ी त्रुटियाँ आ गई थीं। शराब-जुए तो उनकी घुट्टी में पड़े हुए थे ही, लूट-मार और गन्दे आचरणों के नमूने भी कुछ कम न मिलते थे। यह सब कुछ था पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अपने स्वभाव के अनुसार बचपन से ही इन चीज़ों से दूर रहते। उन्हें शराब व जुए से घृणा थी, वे दुराचार से दूर भागते थे। उनमें रहमदिली, सच्चाई, अमानतदारी आदि कूट-कूटकर भरी थी, यही वजह है कि इस्लाम से पहले जुर्माने की रक़में सब उन्हीं के यहाँ जमा होतीं। सगे-सम्बन्धियों का ध्यान, मेहमानों की आव-भगत, पीड़ितों की सहायता, दीन-दुखियों की सेवा आदि गुणों में वे सदा ही आगे रहते—फिर मुसलमान होने के बाद और ईमान की दौलत से मालामाल होने के बाद तो उनके ये गुण और भी चमक उठे।

उनके अल्लाह से डर, भय और संयम की दशा यह थी कि मुसलमान होने से पहले ही एक बार उन्हें एक व्यक्ति किसी अनजाने रास्ते से ले गया और यह भी बता दिया गया कि इस रास्ते में ऐसे आवारा व बदमाश लोग रहते हैं कि इस ओर से गुज़रने में भी लज्जा आती है। इतना सुनना था कि वहीं खड़े हो गए और यह कहकर लौट आए, "मैं ऐसे गन्दे रास्ते से नहीं जा सकता।"

एक बार आपके एक दास ने खाने की कोई चीज़ लाकर सामने रखी। जब खा चुके तो उन्होंने बताया—

"आप जानते हैं यह कैसे प्राप्त हुआ ?"

"बताओ !"

"मैंने इस्लाम लाने से पहले एक व्यक्ति का शकुन निकाला था" दास ने बताना शुरू किया, "शकुन निकालना तो जानता न था, केवल उसे धोखा दिया था। आज उसने बदले में यह खाना दिया है।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को जब पूरी स्थिति मालूम हो गई तो मुँह में उँगली डालकर जो कुछ खाया था, क़ै कर दिया। कहा करते थे, "जो शरीर हराम खाने से पलता है, उसका ठिकाना जहन्नम होता है।"

अल्लाह से भय, रसूल से प्रेम और संयम में वे यहाँ तक आगे बढ़ गए थे कि एक ईद के दिन—

हज़रत आइशा (रज़ि०) के घर में अनसार की दो लड़कियाँ बुआस की लड़ाई की ऐतिहासिक गीत गा रही थीं। रसूलुल्लाह (सल्ल०) दूसरी ओर मुँह किए हुए आराम कर रहे थे कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) आ गए। उनके रसूल-प्रेम व संयम ने इतना भी पसन्द न किया, हज़रत आइशा (रज़ि०) को डाँटकर बोले—

"रसूलुल्लाह के सामने ये शैतानी बाजे व गाने ?" तुरन्त ही पैग़म्बरे इस्लाम

(सल्ल०) बोल पड़े—

"अबू बक्र ! इन्हें गाने दो, हर जाति के लिए एक ईद होती है और य़ा हमारी ईद है ।"

फिर उनका ईश-भय इतना बढ़ा हुआ था कि पाप के किसी कर्म का करन तो बड़ी बात, कड़े शब्द का मुँह से निकल जाना भी उनपर बहुत बोझ हो जाता यहाँ तक कि जब तक प्रायश्चित न कर लेते, चैन न लेते ।

एक बार हज़रत उमर (रज़ि०) से किसी बात में मतभेद हो गया । बात करते-करत कोई कड़ा शब्द मुख से निकल गया । परेशान हो उठे, और हज़रत उमर (रज़ि०) से क्षमा माँगने लगे । हज़रत उमर (रज़ि०) ने क्षमा करने से इनकार कर दिया उस समय हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की विकलता की कोई हद न रही । दौड़े-दौड़े रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पास पहुँचे और अपनी परेशानी उनके सामने रखी । अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उन्हें सांत्वना दी और कहा—

"अबू बक्र ! अल्लाह तुम्हें क्षमा कर देगा, अबू बक्र ! अल्लाह तुम्हें क्षम कर देगा, अबू बक्र ! अल्लाह तुम्हें क्षमा कर देगा ।"

इसी बीच हज़रत उमर (रज़ि०) को अपने इनकार पर पश्चाताप हुआ और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) को उनके मकान पर खोजते-खोजते नबी (सल्ल०) की सेव में आ पहुँचे । उन्हें देखकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के दमकते चेहरे का रंग बदलने लगा । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने भाँप लिया, तुरन्त ही बोल पड़े—

"ऐ अल्लाह के रसूल ! अल्लाह की क़सम ! मैंने ही ज़ुल्म किया था, मेरी ग़लती थी ।"

कितना था प्यार इन शब्दों में, और कैसी थी हमदर्दी ! अबू बक्र (रज़ि०) ने ही जब निवेदन किया तो भला रसूलुल्लाह (सल्ल०) का ग़ुस्सा क्यों न ठंडा पड़ता, फिर भी आप वास्तविकता प्रकट किए बिना न रहे और फ़रमाया—

"मैंने अल्लाह की ओर से अपने रसूल होने का एलान किया तो तुम सबने मुझे झुठला दिया, पर अबू बक्र (रज़ि०) ने तस्दीक़ करके जान व माल से मेरा ग़म ग़लत किया । क्या तुम मुझसे मेरे साथी को छुड़ा दोगे ?"

हज़रत रबीआ बिन जाफ़र (रज़ि०) और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) में एक पेड़ के लिए आपस में मतभेद हो गया । हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने बातचीत करते समय कोई ऐसा वाक्य कह दिया जो उन्हें बुरा लगा । लेकिन जैसे ही ग़ुस्सा दूर हुआ, कहने लगे —

"रबीआ ! तुम भी मुझे ऐसी ही कड़वी बात कह दो ।" उन्होंने इनकार किया तो घबराए हुए व परेशान नबी (सल्ल०) के पास आए । हज़रत रबीआ (रज़ि०)

साथ में थे । आपने पूरी बात सुनी और फ़रमाया —

"रबीआ ! तुम कोई कड़ा उत्तर न दो लेकिन यह कह दो— अबू बक्र ! ल्लाह तुम्हें माफ़ कर दे।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) पर इस घटना का इतना प्रभाव था कि वे बुरी तरह रहे थे और आँखों से आँसुओं की धारा बराबर बहे चली जा रही थी ।

पद-पदवी से उदासीनता

सच्चा ईमान उसी का है और सच्चा मोमिन वही है जिसकी नज़र हर वक़्त ाख़िरत पर हो, जो अल्लाह के लिए ज़िन्दा हो और उसी के लिए मरना चाहता , जिसका विश्वास हो कि मरने के बाद के जीवन की सफलता असल सफलता , न कि संसार में धन-दौलत और पदवी प्राप्त कर लेने की सफलता । हज़रत ाबू बक्र (रज़ि०) का ईमान ऐसा ही था और वे सच्चे मोमिन कहलाए जाने के क़दार थे । ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारियाँ तो उन्होंने मुसलमानों में गुटबन्दी पैदा होने ौर उभरते इस्लामी राज्य की नींव उखड़ जाने से बचाने के उद्देश्य से अपने कन्धों र उठा ली थी, वरना उनका मन था कि कोई अगर इस बोझ को उठाने के लिए यार हो तो यह बोझ अपने कन्धों पर उठा ले ।

हज़रत राफ़े ताई (रज़ि०) कहते हैं कि एक बार मैंने कहा—"आप पहुँचे हुए ज़ुर्ग हैं, मुझे कुछ वसीयत करें," बोले—

"अल्लाह तुम पर दया व कृपा करे, नमाज़ें और रोज़े रखो, ज़कात दो, हज रो और सबसे बड़ी बात यह है कि कभी नेतृत्व (Leadership) व उच्च पद वीकार न करो । संसार में नेता की ज़िम्मेदारी भी बढ़ जाती है और क़ियामत प्रलय) के दिन उसकी पकड़ भी कड़ी होगी और चार्जशीट भी लम्बी होगी ।"

एक बार उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा । लोगों ने पानी और शहद लाकर ख दिया, लेकिन जैसे ही मुँह के क़रीब ले गए, अनचाहे ही आँखों में आँसू र आए और इतना रोए कि तमाम लोग प्रभावित हो उठे । जब कुछ शांत हुए ो लोगों ने रोने का कारण पूछा । कहने लगे —

"एक दिन रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ था, आप किसी चीज़ को 'दूर-दूर' कह रहे थे" "अल्लाह के रसूल ! क्या चीज़ है जिसे दूर फ़रमा रहे हैं ? मैं तो कुछ नहीं देखता", मैंने पूछ लिया । फ़रमाया, "यह छली संसार रूप धारण करके रे सामने आया था, मैंने उसे दूर कर दिया ।"

इस समय मुझे वही घटना याद आ गई और डरा कि कहीं उसके जाल में गिरफ़्तार ा हो जाऊँ ?"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की संसार से उदासीनता अगर देखनी है तो इ
देखिए कि सत्य की राह में अपनी पूरी पूँजी लुटा दी । फिर नौबत यहाँ तक प
कि ख़लीफ़ा बनने के बाद वे बैतुलमाल (राजकोष) के छ: हज़ार दिरहम के क़र्ज़
हो गए, लेकिन जनता की एक कौड़ी भी अपने ऊपर ख़र्च करना या औलाद
लिए छोड़ जाना उन्हें पसन्द न था, मरते समय वसीयत कर दी कि मेरा अ
बाग़ बेचकर बैतुलमाल का क़र्ज़ चुका दिया जाए और जो कुछ बच जाए
उमर (रज़ि०) के पास भेज दिया जाए । हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं
मरने के बाद जब जाँच की गई तो केवल इतनी चीज़ें निकलीं—एक दास
दो ऊँटनियाँ । अतएव ये तमाम चीज़ें उसी समय हज़रत उमर (रज़ि०) के प
भेज दी गईं । इस्लामी राज्य के दूसरे ख़लीफ़ा की आँखें छलक पड़ीं, रो
बोले —"अबू बक्र ! अल्लाह आप पर कृपा करे, आप मरने के बाद भी सं
से उदासीनता की शिक्षा देना न भूले और न ही इसका मौक़ा दिया कि कोई अ
पर उँगली रख सके ।"

विनम्रता व सुशीलता

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) बड़े ही विनम्र व बड़े ही सुशील थे । किसी
काम के करने में उन्हें झिझक न होती । प्राय: भेड़, बकरियाँ ख़ुद ही चरा ले
और मुहल्लेवालों की बकरियाँ दुह देते थे । यही कारण है कि जब आपको ख़ली
बना लिया गया तो सबसे ज़्यादा मुहल्ले की एक लड़की को यह चिन्ता हो ग
कि उसकी बकरियाँ अब कौन दुहेगा ? हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने सुना
फ़रमाया —

"अल्लाह की क़सम ! मैं बकरियाँ दुहूँगा, आशा है कि मेरा ख़लीफ़ा ब
दिया जाना मुझे जन-सेवा से रोक न सकेगा ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) कपड़े का व्यापार करते थे, ख़लीफ़ा चुने जाने
बाद भी पहले की तरह ही कन्धे पर कपड़ों के थान रखकर बाज़ार की ओर चले
रास्ते में हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अबू उबैदा (रज़ि०) से भेंट हुई । उन्हों
कहा, "अब आप मुसलमानों के शासक हैं, चलिए हम आपके लिए कुछ वज़ीफ़
तय कर देंगे ।" या एक कथन के अनुसार जब ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारियों
कारण आप अपना निजी काम न कर सके तो साथियों से कहा, "मेरी क़ौम
लोग जानते हैं कि मेरा पेशा मेरे घरवालों का बोझ उठाने में नाकाफ़ी न था, अ
अब मैं मुसलमानों के काम में लग गया हूँ, इस कारण मेरे घरवाले इस माल
से खाएँगे और मुसलमानों के लिए व्यापार करेंगे ।" साथियों ने इसे मंज़ूर कर लिया

राजधानी से जब कोई सेना भेजी जाती तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) अपनी ज़ोरी व बुढ़ापे के बावजूद दूर तक पैदल जाते । अगर कोई अफ़सर सम्मान गोड़े से उतरना चाहता तो रोककर कहते—

"इसमें क्या बात है अगर मैं थोड़ी दूर तक चलकर अल्लाह की राह में अपने धूल में भर लूँ, अल्लाह ऐसे लोगों पर जहन्नम की आग हराम कर देता है ।"

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का हाल तो यह था कि गर्व व अभिमान की निशानियों भी काँप जाते । एक दिन पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति से अपना कपड़ा खींचते हुए चलता है । क़ियामत के दिन अल्लाह उसकी र नज़र तक न उठाएगा ।" हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) घबरा गए कि उनका न भी कभी-कभी लटक जाता है ?

फ़रमाया, "तुम गर्व से ऐसा तो करते नहीं ।"

अल्लाह की राह में ख़र्च

हम पिछले पन्नों में यह लिख चुके हैं कि हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इस्लाम ने में जिस निष्ठा व प्रेम का सुबूत दिया और इस्लाम लाने के बाद जिस तरह -मन-धन की बाज़ी लगा दी, उसका उदाहरण मिलना कठिन है । इस्लाम ग्रहण ने से पहले उनके पास 40,000 दिरहम नक़द मौजूद थे, साथ ही निष्ठा भी छ कम न थी । जब पैग़म्बरे इस्लाम कृतज्ञता के रूप में कहते—

"जान व माल के रूप में मुझपर अबू बक्र (रज़ि०) से अधिक किसी का उपकार ।"—तो रो-रोकर कहने लगते —

"ऐ अल्लाह के रसूल ! जान व माल सब हुज़ूर के लिए ही है ।"

इस्लाम के शुरू के दिनों में कुछ दासों ने भी इस्लाम स्वीकार कर लिया था, सके कारण उनके स्वामी उनपर कठोर अत्याचार करते, उन्हें जलती रेत पर लिटाकर ं भारी पत्थरों से दबा देते, उन्हें बाँध देते, खाना-पीना बन्द कर देते आदि । रत अबू बक्र (रज़ि०) से उनके ये अत्याचार देखे न जाते और उन्हें उनकी मत उनके स्वामियों को देकर छुड़ा लेते—बिलाल, आमिर, ज़न्नीरा, जारिया, मोमिल, नहदिया आदि न जाने कितने दास व दासी थे जो स्वामियों के ज़ुल्म शिकार बने हुए थे और जिनकी गरदनों को हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ही ने ाया था ।

ऐसे ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) दान-पुण्य में भी सदा आगे-आगे रहे । हज़रत र (रज़ि०) ने अनेकों बार चाहा कि वे बाज़ी ले जाएँ, पर एक बार भी उनके ाबले में सफल न हुए । एक बार पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) ने साथियों को

सदक़ा (दान-पुण्य) निकालने का हुक्म दिया । हज़रत उमर (रज़ि०) के पास समय हमेशा से अधिक धन था । उन्होंने विचार किया कि आज अबू बक्र (रज़ि से आगे बढ़ जाने का मौक़ा है, इसलिए वे अपना माल लेकर पैग़म्बर इस्ल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए। अल्लाह के रसूल(सल्ल०) ने पूछा, बाल-बच् के लिए क्या छोड़ा। हज़रत उमर (रज़ि०) बोले "इतना ही ?" पर हज़रत अ बक्र (रज़ि०) अपनी पूरी पूँजी उठा लाए थे । उनसे जब बच्चों के विषय में पू गया तो उन्होंने कहा, "उनके लिए ख़ुदा और उसका रसूल काफ़ी है ।" इस त्य व बलिदान पर तो हज़रत उमर (रज़ि०) की आँखें खुल गईं, बोले—"अब कभी इनसे आगे नहीं बढ़ सकता ।"

जन-सेवा

अबू बक्र (रज़ि०) जैसा नम्र व हितैषी व्यक्ति जब जन-समूह के भीतर रहे तो उसे तो सेवा में आनन्द ही आएगा । वे तो दूसरों की सेवा का मौक़ा खोज मुहल्लेवालों का काम करते, बीमारों की देख-भाल करते और अपने हाथ से कमज़ व बूढ़ों की सेवा करने में कभी न झिझकते ।

मदीना के क़रीब ही एक बूढ़ी अन्धी औरत रहा करती थी । हज़रत उमर (रज़ि हर दिन सुबह सवेरे ही उसके झोंपड़े में काम कर दिया करते । कुछ दिनों के ब उन्होंने महसूस किया कि कोई व्यक्ति उनसे भी पहले यह नेक काम कर जा है । एक दिन कुछ रात रहे ही पूरी-पूरी खोज करते हुए आए और देखा कि हज़ अबू बक्र (रज़ि०) उस बूढ़ी औरत का काम करके झोंपड़े से निकल रहे हैं, चिल पड़े—"क्या हर दिन आप ही पहले काम कर जाते हैं ?"

धार्मिक जीवन

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) रात-रात भर नमाज़ें पढ़ते, दिन को प्राय: रोज़े रख ख़ासतौर से गर्मी का मौसम रोज़ों ही में बीतता । नमाज़ों में एकाग्रता की स्थि यह थी कि लकड़ी की तरह बिना हिले-डुले खड़े रहते, अल्लाह का डर इत पैदा होता कि रोते-रोते हिचकी बंध जाती थी । अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास अ परलोक का भय इतना रहता कि हरा-भरा पेड़ देखते तो कहते, "काश ! मैं ही होता कि हिसाब-किताब के झगड़ों से छूट जाता ।" किसी बाग़ से गुज़ और चिड़ियों को चहचहाते देखते तो ठंडी आहें भरकर कहते—"चिड़ियो ! तु मुबारक हो कि दुनिया में चरती-चुगती हो, पेड़ों की छाया में बैठती हो और क़ियाम में तुम्हारा कोई हिसाब-किताब नहीं । काश ! अबू बक्र भी तुम्हारी तरह होता !

क़ुरआन मजीद जब पढ़ते तो अनचाहे ही आँखों से आँसू जारी हो जाते और तना फफक-फफक रोते कि आस-पास के तमाम लोग जमा हो जाते ।

सवाब बटोरने का लोभ उनमें कितना था, इसका अन्दाज़ा इस घटना से कीजिए के एक दिन पैग़म्बर इस्लाम (सल्ल०) ने साथियों से पूछा —

"आज तुममें से रोज़े से कौन है ?"

'मैं', हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने कहा ।

फिर कहा—"आज किसी ने जनाज़े का साथ दिया है ? किसी ग़रीब को खाना खिलाया है ? किसी ने बीमार को देखने जाने का साहस किया है ?"

इन सवालों के जवाब में अगर किसी ने हाँ कहा तो वे हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) थे ।

आपने फ़रमाया —

"जिसने एक दिन में इतने सवाब बटोर लिए हों वह निश्चय ही जन्नत में जाएगा ।"

मेहमानों की आव भगत

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) मेहमानों की बड़ी आव भगत करते और उनका बहुत ध्यान रखते ।

एक बार रात के समय सहाबियों में से कुछ लोग उनके मेहमान थे । उन्होंने अपने बेटे अब्दुर्रहमान (रज़ि०) को हिदायत कर दी कि मैं रसूलुल्लाह (सल्ल०) की सेवा में जा रहा हूँ, मेरे वापस आने से पहले इन्हें खिला-पिला देना । हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) ने हिदायत के मुताबिक़ उनके सामने खाना लगा दिया, पर उन लोगों ने घर के मालिक की अनुपस्थिति में खाने से इनकार कर दिया । संयोग की हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) देर से आए और यह मालूम करके कि मेहमान अब तक भूखे बैठे हैं अपने बेटे पर बहुत ज़्यादा नाराज़ होने लगे और बुरा-भला कहकर कहा, "अल्लाह की क़सम ! मैं इसको आज खाने में शरीक नहीं करूँगा ।" हज़रत अब्दुर्रहमान (रज़ि०) पहले तो डरे, फिर कुछ साहस बटोर कर कहा, "आप अपने मेहमानों से पूछ लीजिए कि मैंने खाने के लिए आग्रह किया था या नहीं ?" मेहमानों को जब पूरी बात मालूम हुई तो उन्होंने सब कुछ बताने के बाद कहा, "अल्लाह की क़सम, जबतक आप अब्दुर्रहमान (रज़ि०) को खाना न खिलाएँगे, हम लोग भी न खाएँगे ।"

तब कहीं जाकर ग़ुस्सा ठंडा हुआ और सब लोगों ने खाना खाया ।

अन्तिम बातें

कैसा था हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) का निजी जीवन ! भला ऐसे व्यक्ति के रहते हुए इस्लामी राज्य का ख़लीफ़ा और कौन बन सकता था, सोचने और समझने की बात है । शासन की भारी ज़िम्मेदारियों से निबटने के लिए सूझ-बूझवाले दूरदर्शी, कर्मठ और निष्ठावान व्यक्ति की ज़रूरत है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता लेकिन इसके लिए शुद्ध मन, शुद्ध दृष्टि और शुद्ध भावनाओंवाले व्यक्ति की भी बड़ी ज़रूरत होती है। सफल ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के जीवन-चरित्र से हमें इसी की सीख मिलती है ।

काश ! हम उनको आदर्श मानकर कुछ सीखते और समझते ।
